ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

फरवरी २०१६

Date of Printing = 05-02-16
प्रकाशन दिनांक= 05-02-16

वर्ष ४५ : अङ्क ४
दयानन्दाब्द : १९१
विक्रम-संवत् : माघ-फाल्गुन, २०७२
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११६

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व
सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

❑ वैदिक पुनर्जन्म......	२
❑ वेदोपदेश	३
❑ आतंकवाद और राजनीति	५
❑ आचार्य बलदेव जी	७
❑ हाय दिनकर जी क्या...	९
❑ पौराणिक शिव....	१४
❑ गंगा तट पर....	१६
❑ शिवरात्रि	१९
❑ न देवा....	२४

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

वैदिक पुनर्जन्म सिद्धान्त

लेखक स्वामी वेदानन्द सरस्वती, उत्तरकाशी

असुनीते पुनरस्यातु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो घेहि भोगक्ष।
क्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमतेमृष्ठया नः स्वस्ति।।

ऋ० १०-५६-६

अर्थात् हे प्राण प्रदाता ! हमें पुनर्जन्म में फिर से चक्षुरादि ज्ञानेन्द्रियाँ, अन्तःकरण तथा अन्नादि भोग पदार्थ निरन्तर प्रदान कीजिये। जिससे हम सब जन्मों में प्रकाशमय सूर्य लोक को निरन्तर देखते रहें। आपकी कृपा से हमारे जीवन सुखी रखिये, जिससे हमारा कल्याण हो।

जन्म का लक्षण है **जीवात्मा का शरीर, मन, इन्द्रियादि साधनों के साथ संयोग होना।** जहाँ संयोग हुआ है वहां वियोग अवश्य होगा।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न तं शोचितुमर्हति।।
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्त मध्यानि भारत।
अव्यक्त निधनान्येव तथा का परिदेवना।।

जो उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु और मरे हुवे का जन्म निश्चित है। जन्म से पूर्व तथा मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा अव्यक्त ही रहता है। केवल जीवनकाल में ही व्यक्त रूप में होता है।

सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द लिखते हैं

प्रश्न जन्म एक है या अनेक ?

उत्तर अनेक हैं।

प्रश्न अनेक हैं, तो पूर्व जन्म और मृत्यु की बातों का स्मरणक्यों नहीं होता ?

उत्तर जीव अल्पज्ञ है इसलिये स्मरण नहीं रहता। पूर्व जन्म की बात तो दूर रही, इसी जन्म की सब बातें उसे कहाँ याद रहती हैं और स्मरण नहीं रता तो अच्छा ही है, नहीं तो वह पिछले जन्मों के दुःखों की याद कर-करके ही मर जाता।

प्रश्न जब जीव को पूर्व जन्म का ज्ञान नहीं रहता और ईश्वर पूर्व जन्म के पाप कर्मों का दण्ड देता है तो जीव का सुधार कैसे होगा।

उत्तर जीव का ज्ञान दो प्रकार का होता है एक स्वाभाविक और दूसरा नैमित्तिक। स्वाभाविक ज्ञान जीव के पास नित्य रहता है और नैमित्तिक ज्ञान देश, काल और किसी वस्तु के संयोग से निमित्त से उत्पन्न होता है। इन निमित्तों के हठ जाने से नैमित्तिक ज्ञान का भी नाश हो जाता है। पूर्व जन्म के देश, काल और शरीरादि के नैमित्तिक भेद होने से इस जन्म में उसका बोध नहीं रहता तथा मन का यह स्वभाव है कि उसको एक समय में कई विषयों का बोध एक साथ नहीं होता। ''मैं हूँ'' ऐसा स्वाभाविक ज्ञान तो जीवात्मा को सदैव रहता है किन्तु चक्षु, श्रोत्रादि, इन्दियों के निमित्त से होने वाले नैमित्तिक ज्ञान में परिवर्तन होता रहता है। जैसे पाठशाला में उत्तम, मध्यम और अधम बुद्धि वाले बालक देखें जाते हैं वैसे ही प्राणियों की स्मृतियों में नाना भेद देखे जाते हैं।

नैमित्तिक ज्ञान आठ प्रकार का होता है प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव। प्रत्यक्ष ज्ञान का क्षेत्र अति परिमित है। अनुमान ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत और व्यापक है। जैसे कोई व्यक्ति जो वैद्यक नहीं जानता, वह यदि रोगी हो जाता है तो अनुमान ज्ञान से वह इतना अवश्य जानता है कि रोग का कोई न कोई कारण अवश्य है। एक ही माता-पिता के दो बालकों की बुद्धि में भेद देखा जाता है अनुमान से ज्ञात होता है कि यह भेद पूर्वजन्म के शुभाशुभ कर्मों का फल है।

पूर्वजन्म के विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि माता के पेट से पैदा होते ही बालक श्वास लेने लगता है, रोता है, यह प्रवृत्ति उसमें पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण ही होती है। माँ के स्तन खींच कर पीने लगता है। मां की धमकी को भी समझता है। यह सब पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण ही करता है। इस जीवन में जो सुख वा दुःख देखने में आते

शेष पृष्ठ 22 पर

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। **अग्निः = ईश्वरः भौतिकोऽग्निः देवता।** स्वराड् जगती छन्दः।। निषादः स्वरः।।

यज्ञशालादिगृहाणि कीदृशानि रचनीयानीत्युपदिश्यते।।

यज्ञशाला आदि घर कैसे बनाने चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है।

ओ३म्

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृंहन्तां दुर्य्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि। पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्याऽउपस्थेऽग्ने हव्यंरक्ष ।।

यजु० १-११।।

पदार्थः (भूताय) उत्पन्नानां प्राणिनां सुखाय **(त्वा)** तं कृषिशिल्पादिसाधनम् **(न)** निषेधार्थे **(अरातये)** रातिर्दानं न विद्यते यस्मिन् तस्मै शत्रवे बहुदानकरणार्थं दारिद्रयविनाशाय वा **(स्वः)** सुखमुदकं वा। **स्वरिति सुखनामसु पठितम्।। निघं० ३।६।। उदकनामसु च।। १ । १२ ।। (अभिविख्येषम)** अभितः= सर्वतो विविधं पश्येयम्। **अत्राभिव्योरुपपदे चक्षिङ् इत्यस्याशीर्लिङ्यार्धधातुकसंज्ञामाश्रित्य ख्याञ् आदेशः। लिङ्याशिष्यङित्यङ् सार्वधाुकसंज्ञाश्रित्य च या इत्यस्य इय् आदेश। सकारलोपाभाव इति। (दृंशः हन्ताम्)** दृंहन्तां वर्धयन्ताम्। **अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः (दुर्य्याः)** गृहाणि। **दुर्य्या इति गृहनामसु पठितम्।। निघं ३ । ४। (पृथिव्याम्)** विस्तृतायां भूमौ **(उरु)** बहु **(अन्तरिक्षम्)** अवकाशं सुखेन निवासार्थम् **(अनु)** क्रियार्थे **(एमि)** प्राप्नोमि **(पृथिव्याः)** शद्धाया विस्तृताया भूमेः **(त्वा)** तं पूर्वोक्तं यज्ञम् **(नाभौ)** मध्ये **(सादयामि)** स्थापयामि **(अदित्याः)** विज्ञानदीप्तेर्वेदवाचः सकाशादन्तरिक्षे मेघमंडलस्य मध्ये, **अदितिद्यौरदितिरन्तरिक्षमिति मंत्रप्रामाण्यात्।। ऋ. १ । ८ । ६ ।१० ।। अदितिरिति वाङ्नामसु पठितम्।। निघं० १ । ११ । पदनामसु च।। निघं० ४ । १ ।। (उपस्थे)** समीपे **(अग्ने)** परमेश्वर! **(हव्यम्)** दातुं ग्रहीतुं योग्यं क्रियाकौशलं सुखं वा **(रक्ष)** पालय।। अयं मंत्रः श० १ । १ । २ । २०-२३ व्याख्यातः ।। ११ ।।

प्रमाणार्थ (स्वः) 'स्वः' शब्द निघं० (३ । ६) में सुख नामों में पढ़ा है और निघं० (१।१२) में उदक (जल) नामों में भी पढ़ा है। (अभिविख्येषम्) यहाँ अभि-वि के उपपद रहते 'चक्षिङ्' धातु को आशीर्लिङ् में आर्धधातुक संज्ञा होने से 'ख्याञ्' आदेश है और 'लिङ्याशिष्यङ्' से अङ, पुनः सार्वधातुक संज्ञा के आश्रय से 'या' को 'इय' हुआ एवं सकार का लोप नहीं है। (दृंहन्ताम्) यहाँ अन्तर्भावित ण्यर्थ है (दुर्य्याः) 'दुर्य्याः' शब्द निघं० (३ । ४) में गृहनामों में पढ़ा है। (अदित्याः) 'अदिति' शब्द ऋ० (१।८।६।१०) में द्यौ और अन्तरिक्ष अर्थ में आया है। निघं० (१।११) में 'अदिति' शब्द वाणी के नामों में पढ़ा है। निघं० (४।१) में 'अदिति' शब्द पदनामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । १ । २ । २०-२३) में की गई है। १ । ११ ।।

सपदार्थान्वयः अहं यं भूताय उत्पन्नानां प्राणिनां सुखाय **अरातये=अदानाय** रातिः= दानं न विद्यते यस्मिन्

तस्मै शत्रवे, बहुदानकरणार्थं, दारिद्र्यविनाशाय वा **अदित्याः** विज्ञानदीप्तेर्वेदवाचः सकाशादन्तरिक्षे मेघमण्डलस्य मध्ये **उपस्थे** समीपे **यज्ञं सादयामि** स्थापयामि (त्वा)= **तं** (तं) कृषिशिल्पादिसाधिनं (न) **कदाचिन्न त्यजामि।**

हे विद्वांसो! भवन्तः पृथिव्यां विस्तृतायां भूमौ **दुर्य्याः** गृहाणि **दृंहन्तां=वर्धयन्ताम्। अहं पृथिव्याः** शुद्धाया विस्तृताया भूमेः **नाभौ=मध्ये, येषु गृहेषु स्वः** सुखमुदकं वा **अभिविख्येषम्** अभितः सर्वतो विविधं पश्येयम्, **यस्यां पृथिव्यां** विस्तृतायां भूमौ **उरु** बहु **अन्तरिक्षम्** अवकाशं सुखेन निवासार्थं **च, अन्वेमि** प्राप्नोमि।

हे अग्ने=जगदीश्वर! परमेश्वर! **त्वमस्माकं हव्यं** दातुं ग्रहीतुं योग्यं क्रियाकौशलं सुखं वा **सर्वदा रक्ष** पालय। **इत्येकोऽन्वयः।।**

भाषार्थ मैं जिस यज्ञ को **(भूताय)** उत्पन्न प्राणियों के सुख के लिये **(अरातये)** शत्रु के लिये, बहुत दान करने के लिए अथवा दरिद्रता के विनाश के लिये **(अदित्याः)** विज्ञान के दीपक वेद की वाणी से आकाश में मेघमण्डल के **(उपस्थे)** मध्य में **(सादयामि)** स्थापित करूँ **(त्वा)** उस कृषि और शिल्प आदि के साधक यज्ञ को **(न)** कभी न छोडूँ।

हे विद्वानो! आप **(पृथिव्याम्)** इस विस्तृत भूमि पर **(दुर्याः)** घरों को **(दृंहन्ताम्)** बढ़ावें। मैं **(पृथिव्याः)** शुद्ध विस्तृत भूमि के **(नाभौ)** मध्य में जिन घरों में **(स्वः)** सुख एवं जल आदि सुख के साधन हों, उन्हें **(अभिविख्येषम्)** सब ओर देखूँ, और जिस **(पृथिव्याम्)** विस्तृत भूमि पर **(उरु)** बहुत **(अन्तरिक्षम्)** सुख से निवास के लिये अवकाश हो, उसे **(अन्वेमि)** प्राप्त करूँ।

हे **(अग्ने)** जगत् के स्वामी परमेश्वर! आप हमारे **(हव्यम्)** परस्पर लेने-देने योग्य क्रियाकौशल वा सुख की सदा **(रक्ष)** रक्षा करो।। यह मन्त्र का पहला अन्वय है।

अथ द्वितीयमन्वयमाह हे अग्ने=जगदीश्वर! अहं भूताय उत्पन्नानां प्राणिनां सुखाय **अरातये** रातिः=दानं न विद्यते यस्मिन् तस्मै शत्रवे बहुदानकरणार्थं, दारिद्र्यविनाशय वा **पृथिव्याः** शुद्धाया विस्तृताया भूमेः **नाभौ** मध्ये ईश्वरत्वो **पास्यत्वाभ्यां स्वः=सुखरूपं** सुखमुदकं वा **(त्वा)=त्वामभिविख्येषम्=प्रकाशयामि** अभितः सर्वतो विविधं पश्येयम्।

भवत्कपयेमेऽस्माकं दुर्याः=गृहादयः पदार्थास्तत्रस्था मनुष्यादयः प्राणिनो दृंहन्ताम्=नित्यं वर्धन्ताम्।

अहं पृथिव्यां विस्तृतायां भूमौ **उरु** बहु **अन्तरिक्षम्=व्यापकम्** अवकाशं सुखेन निवासार्थम् **उपस्थे** समीपे **त्वा=त्वामन्वेमि=नित्यं प्राप्नोमि (न) न कदाचित् त्वा=त्वां त्यजामि। त्वमिदमस्माकं हव्यं** दातुं ग्रहीतुं योग्यं क्रियाकौशलं सुखं वा **सर्वदा रक्ष** पालय।। **इति द्वितीयः।।**

दूसरा अन्वय हे **(अग्ने)** जगदीश्वर! मैं **(भूताय)** उत्पन्न प्राणियों के सुख के लिये **(अरातये)** शत्रु के लिये, बहुत दान करने के लिए अथवा दरिद्रता के विनाश के लिए **(पृथिव्याः)** शुद्ध विस्तृत भूमि के **(नाभौ)** मध्य में ईश्वर और उपास्य होने से **(स्वः)** सुखस्वरूप एवं सुख शान्ति के निमित्त **(त्वा)** आपको **(अभिविख्येषम्)** सब ओर विविध प्रकार से देखूँ।

आपकी कृपा से ये हमारे **(दुर्याः)** गृह आदि पदार्थ और वहाँ रहने वाले मनुष्य आदि प्राणी **(दृंहन्ताम)** नित्य वृद्धि को प्राप्त हों।

मैं **(पृथिव्याम्)** विस्तृत भूमि पर **(उरु)** बहुत **(अन्तरिक्षम्)** व्यापक एवं सुख से निवास के लिए अवकाश **(उपस्थे)** में **(त्वा)** आपको **(अन्वेमि)** प्राप्त करूँ और **(त्वा)** आपको **(न)** कभी न छोड़ूं। आप हमारे इस **(हव्यम्)** परस्पर देने-लेने योग्य क्रिया कौशल वा सुख की सदा **(रक्ष)** रक्षा कीजिये। यह मन्त्र का दूसरा अन्वय है।

भावार्थ अत्र श्लेषालङ्कारः। ईश्वरेण मनुष्यं आज्ञाप्यते हे मनुष्य! अह त्वां सर्वेषां भूतानां सुखदानाय पृथिव्यां रक्षयामि।

भावार्थ इस मन्त्र में श्लेष अलंकार है। ईश्वर मनुष्य को आज्ञा देता है- हे मनुष्य! मैं तुझे सब प्राणियों को सुख देने के लिए पृथिवी पर स्थापित करता हूँ।

आतंकवाद और राजनीति

(धर्मपाल आर्य)

पिछले माह (2 जनवरी को) आतंकवादियों ने पंजाब के शहर पठानकोट पर हमला किया, जिसमें हमारी सेना के आठ जवान शहीद हो गए। जिस पठानकोट को आतंकवादियों ने निशाना बनाया था, वह सुरक्षा की दृष्टि से अत्यन्त संवेदनशील व महत्वपूर्ण स्थान है। पठानकोट पर हुए आतंकी हमले की हमारे देश में सामाजिक व राजनीतिक स्तर पर कड़ी प्रतिक्रिया तो हुई ही, साथ ही अमेरिका ने भी अपनी कड़ी प्रतिक्रिया दी। समाचार चैनलों पर उपरोक्त विषय को लेकर पाकिस्तानी राजनीतिक विश्लेषकों व रक्षा विशेषज्ञों के साथ व्यापक बहस हुई। भारत की चढ़ती त्यौरियों से सहमे पाकिस्तान ने निष्पक्ष जाँच का भरोसा दिया। भारत से पाकिस्तानी आतंकियों की संलिप्तता के सबूत माँगे। भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार श्री अजीत डोभाल ने व्यापक प्रमाण दिए, जिनसे पाकिस्तानी आतंकियों की संलिप्तता स्पष्टतः सिद्ध हो रही थी। दोनों ओर से राजनीतिक कूटनीतिक खेल खेला गया। पाकिस्तान ने जाँच का नाटक रचा और उसकी प्रारम्भिक जांच में पाकिस्तानी जाँच एजेन्सियों ने पाकिस्तानी नागरिकों की संलिप्तता को नकार दिया, तो भारत ने भी इस जांच से असहमति व्यक्त करते हुए 15 जनवरी को हेने वाली भारत-पाक सचिव स्तर की वार्ता को निरस्त कर दिया। इसके अतिरिक्त वहां के समाचार-पत्रों ने समाचार प्रकाशित किया कि पठानकोट के मास्टरमाइण्ड और जैश ए मुहम्मद के सरगना मसूद अजहर समेत कुछ आतंकियों को गिरफ्तार किया गया है। लेकिन वहां के एक मन्त्री राणा सनाउल्लाह ने वहां से छपे अखबार की खबर का खण्डन करते हुए कहा कि मसूद अजहर को गिरफ्तार नहीं किया गया, अपितु उसे सिर्फ प्रोटेक्टिव कस्टडी में लिया गया है। जैश ए मुहम्मद की कुछ वेबसाइटों को प्रतिबन्धित कर दिया गया है। पाकिस्तान ने अपना एक जांच दल पठानकोट भेजने का फैसला किया है। मसूद अजहर समेत कुछ आतंकियों को प्रोटेक्टिव कस्टडी में लेना, जैश-ए-मुहम्मद की कुछ वेबसाइटों को प्रतिबन्धित करना तथा पठानकोट में घटनास्थल पर एक अपना जाँच दल भेजने का फैसला आदि ऐसे कदम हैं ,जिनके विषय में यह कहना जल्दबाजी होगी कि पाकिस्तान पठानकोट में हुए आतंकी हमले में भारत के साथ किसी प्रकार की सहानुभूति रखता है अथवा पठानकोट के आतंकी हमले में शामिल पाकिस्तानी हमलावरों पर कार्यवाही करने के प्रति गम्भीर है। पाठक प्रश्न कर सकते हैं कि यदि पाकिस्तान पठानकोट के आतंकी हमले में भारत के प्रति सहानुभूति नहीं रखता और आतंकियों पर कार्यवाही के प्रति गम्भीर नहीं है ,तो पाकिस्तान द्वारा उठाए गए उपरोक्त कदमों के क्या मायने हैं? पाकिस्तान द्वारा उठाये गये कदमों के कोई अधिक सन्तोष देने वाले मायने नहीं हैं। उन कदमों के कूटनीतिक मायने अधिक हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर अपनी खराब होती छवि को निखारने की एक असफल कोशिश है। दोनों देशों की राजनीति का एक और पहलू है,वो यह कि पाकिस्तानी राजनीति ने आतंकी नकाब और भारतीय राजनीति ने छद्म धर्मनिरपेक्षता का नकाब ओढ़ा हुआ है। बीस जनवरी को पाकिस्तान के शहर पेशावर में बाचाखान विश्वविद्यालय पर आतंकी हमला हुआ, जिसमें 25 से अधिक निर्दोष नागरिक मारे गए। उक्त हमले की जिम्मेदारी वहीं के तहरीक-ए-तालिबान नामक आतंकवादी संगठन ने ली। लेकिन इसके बावजूद वहाँ के पूर्व रक्षामन्त्री रहमान मलिक ने बिना किसी प्रमाण के आतंकी हमले का आरोप भारत के सिर मढ़ दिया। जिनकी नजरों पर आतंकी चश्मा चढ़ा होता है, उन्हें और भी आतंकी नजर आते हैं। लेकिन यह तथ्य सारी दुनियां जानती है कि पाकिस्तान आतंकवादियों

की सबसे अधिक सुरक्षित शरणस्थली है। यह भी सारी दुनियाँ जानती है कि पाकिस्तानी शासन की नाक के नीचे ही अनेक आतंकी प्रशिक्षण केन्द्र बिना किसी रोक-टोक के चल रहे हैं। वहाँ की सेना और इंटेलिजेन्स ब्यूरो आईएसआई प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से संरक्षण दे रही हैं। भारत में अब तक जितने भी आतंकी हमले हुए हैं, उनकी योजना पाकिस्तान में रची गयी और मुझे ये लिखने में कोई संकोच नहीं कि आगे जब भी भारत पर आतंकी हमला होगा, उसमें पाकिस्तानी आतंकवादियों की संलिप्तता रहेगी तथा उसकी योजना भी पाकिस्तान में बनायी जायेगी। हमारे देश की राजनीति का बड़ा दुर्भाग्य है कि हमारे राजनीतिज्ञों में दृढ़ इच्छाशक्ति का अभाव है क्योंकि जहाँ तक मुझे याद है, भारत पर अब तक हुए आतंकी हमलों में शामिल आतंकवादियों में से सिर्फ दो को ही कड़ी सजा मिली है, बाकी सब आतंकी पाकिस्तान में खुले आम न केवल घूम रहे हैं, अपितु दिन-रात भारत के खिलाफ षड़यन्त्र रच रहे हैं। मसूद अजहर, हाफिज सईद और दाऊद इब्राहिम जैसे आतंकवादी तथा इनके भिन्न-2 आतंकी संगठन पाकिस्तान में भारत के विरुद्ध एक प्रकार से अघोषित युद्ध छेड़े हुए हैं और वहाँ के हुक्मरान वार्ता का प्रोपेगण्डा रचकर यहाँ (भारत) के हुक्मरानों की आँखों में धूल झोंकने का काम कर रहे हैं। हमारी राजनीति तुष्टीकरण का शीघ्र शिकार हो जाती है, जिसके कारण आतंकी जिस समुदाय विशेष से सम्बन्ध रखते हैं,उनके खिलाफ या तो प्रभावी हो नहीं पाती और यदि होती भी है, तो बहुत धीमी गति से होती है। आचार्य चाणक्य लिखते हैं -

''नाति सरलैर्भाव्यं पश्य गत्वा वनस्थलम्।
सरलास्तत्र छिद्यन्ते, कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः''।

अर्थात् अति सरल भाव से नहीं रहना चाहिए क्योंकि वन में जाकर जब देखते हैं, तो वहाँ सीधे वृक्ष काट दिए जाते हैं, जबकि कुब्ज (टेढ़े-मेढ़े) पेड़ ज्यों की त्यों खड़े रहते हैं। हमारी राजनीति जब तक आवश्यकता से अधिक सरलता की व तुष्टीकरण की शिकार रहेगी, तब तक भारत आतंकी हमलों के घाव सहता रहेगा। संसद व मुम्बई हमले के दोषी अफजल गुरु व कसाब को दण्डित करने में जो विलम्ब हुआ,वह हमारी राजनीतिक शिथिलता तथा दृढ़ इच्छाशक्ति के अभाव को ही दर्शाता है। हमारी राजनीति पर हावी होता तुष्टीकरण देश की एकता व अखण्डता के लिए किसी भयंकर खतरे से कम नहीं है। पठानकोट पर आतंकी हमला हो गया और हमारे राजनीतिज्ञ अभी भी सहिष्णुता-असहिष्णुता, दलित-महादलित और रोहित वेमुला व अखलाक की मौत पर उठे विवाद पर छिड़ी अन्तहीन बहस की दलदल में फंसे हुए हैं। ऐसे महानुभावों को संकुचित राजनीति के कूचे से बाहर निकाल कर देश -हित में सोचने की आवश्यकता है। यदि हमारे राजनीतिज्ञ उपरोक्त बहस की दलदल से बाहर नहीं निकले तो इस बात में कोई दो राय नहीं कि वे भारत की राजनीति के डरावने मुखौटे के रूप में जाने जाएंगे और इसका दुष्परिणाम यह होगा कि समाज में राजनीति और अधिक घृणा की दृष्टि से देखी जाएगी। राजनीतिक दलों के आपसी मतभेद यदि देश के हितों को प्रभावित करें , तो उससे देश की राजनीतिक क्षमता (ताकत) कमजोर होगी और कमजोर राजनीति कभी आतंकी हमलों का प्रभावी प्रतिकार नहीं कर पायेगी। वार्ता का दिखावा करना और अन्दर ही अन्दर आतंकवादियों की भारत-विरोधी गतिविधियों के लिए पीठ थपथपाना ये पाकिस्तानी राजनति के दो खतरनाक पैतरे हैं। हमारी सरकार या तो पाक के उपरोक्त नापाक पैतरों को समझ नहीं पायी या फिर उनका कोई मुँहतोड़ जवाब नहीं दे पायी। महाभारत में महर्षि वेदव्यास लिखते हैं कि हे कौन्तेय!

यदा रक्षति राष्ट्राणि, यदा दस्यूनपोहति।
यदा जयति संग्रामे, सः राज्ञो धर्म उच्यते।।

अर्थात् जब राजा हर प्रकार से राष्ट्र की रक्षा में तत्पर रहता है,राष्ट्र के दुश्मनों का नाश करता है और जब राजा अपनी नीतियों से संग्राम में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है ,तो वही राजा का राजधर्म कहलाता है। परमात्मा करे हमारे राजनेताओं को वह शक्ति प्राप्त हो, जिससे वे उपरोक्त राजधर्म का पालन कर सकें।

गुरुकुलीय परम्परा के संवाहक
आचार्य बलदेव जी महाराज अमर रहें!

(धर्मेश्वरानन्द सरस्वती, मन्त्री-आर्य प्रतिनिधि सभा उ0प्र0, लखनऊ मो0:-9837402192)

आज से 50 वर्ष पूर्व गुरुकुल झज्जर की स्वर्णजयन्ती पर वर्ष 1966 के फरवरी मास में मुझे सर्वप्रथम इनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था उस समय मेरी आयु मात्र 13 साल की थी लेकिन मुझे सब हृदय उपस्थित है युवासम्मेलन मुझे अधिक याद है। व्यायाम प्रदर्शन का पूरा चित्र चित्त में सुरक्षित है। पूज्य स्वामी ओमानन्द उस समय आचार्य भगवानदेव जी के रूप में प्रसिद्ध थे ,तब आपने ब्र0 बलदेव जी और ब्र0 इन्द्रदेव जी (इन्द्रवेष जी) की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। स्वामी समर्पणानन्द जी (पं0 बुद्धदेव विद्यालंकार) ने आचार्य जी की प्रशंसा करते हुए उन्होंने अपना आशीर्वाद दिया था,तभी से पूरे देश में आर्यजगत में ब्रह्मचारी बलदेव जी आचार्य की प्रशंसा रूपी यश का विस्तार हुआ था उसी के 4 मास बाद गुरुकुल झज्जर में 15 दिन व्यायाम सीखने के माध्यम से रहने का सौभाग्य मिला। और उसके पश्चात कुछ समय तक पढ़ने का भी सौभाग्य मिला है। 1968 में जब पढ़ने के लिए गुरुकुल झज्जर में आया था,उस समय आचार्य बलदेव जी ही प्रधानाचार्य के रूप में प्रतिष्ठित थे । आपकी कर्मठता, तपस्या,शालीनता,सौम्यता, विद्वता के आगे सभी नतमस्तक रहते थे,अन्नसंग्रह का कार्य गुरुकुलों के लिए सबसे कठिन परीक्षा होती है,आचार्य बलदेव जी के लिए यह सर्वोत्तम कार्य के रूप में सिद्ध हुआ,आपने पिछले वर्ष की अपेक्षा 2 गुना गेंहू संग्रह करके पूज्य आचार्य के मुख से भी प्रशंसा कराने का आपको सौभाग्य मिला।आप मितभाषी विद्वान् के रूप में प्रसिद्ध हुए। अष्टाध्यायी व्याकरण महाभाष्य जैसा कठिन ग्रन्थ आपको सरल रूप से पढ़ाने का अभ्यास हो गया था,उसका मूल कारण था, हमारे पूज्यपाद गुरुकुल सिरसागंज, मैनपुरी के आचार्य गुरुदेव महात्मा देव स्वामी जी महाराज आप उन्हीं के चरणों में बैठकर विद्वान् बने व गुरुकुल एटा के आचार्य जी से पढ़कर इस योग्य बने कि व्याकरण काशिका और महाभाष्य को सरलतम तरीके से शिष्यों को पढ़ाया करते थे। वहाँ 2 वर्षों तक आचार्य जी ने व्याकरण का अध्ययन किया, गुरुकुल झज्जर में आकर उसका परिमार्जन किया और स्वामी विवेकानन्द जी गुरुकुल प्रभात आश्रम मेरठ जैसे योगी तेजस्वी साधुओं को भी आपने विद्वान् बनाया,आपसे 1 बार में पढ़कर छात्र सन्तुष्ट हो जाया करते थे, मुझ पर आपका स्नेह और आशीर्वाद सदैव रहा आप संकल्प के धनी थे । गुरुकुल झज्जर से गुरुकुल कालवा तक की यात्रा भी संघर्ष,संकल्प और तपस्या तथा पुरुषार्थ से भरा इतिहास है,जो सदैव आने वाली पीढ़ी को प्रेरणा प्रदान करता रहेगा,गुरुकुल कालवा में भ्राता वेदपाल जी का तप पुकार रहा था और आप आचार्य हरिदेव जी (स्वामी प्रणवानन्द जी), योगेन्द्र पुरुषार्थी (दिव्यानन्द जी), विक्रम कुमार विवेकी, आनन्द कुमार जी , धर्मदेव मनीषी, स्वामी यज्ञानन्द आदि -आदि साथी एवं शिष्यों के साथ कालवा आए थे और अपने तप से पूरे क्षेत्रवासियों की श्रद्धा के केन्द्रबिन्दु बने थे। गोरक्षा के लिए आपका संघर्ष पूरे आर्यजगत को याद है। सुन्दर गौशाला निर्माण हेतु तत्कालीन मन्त्री श्रीमती मेनका गाँधी जी ने आपको अपूर्व सहयोग प्रदान किया था। उसके पश्चात आप आर्यसमाज की राजनीति में भी सक्रिय हुए। आपने अपने गुरुकुल में बड़े छात्रों का ही प्रवेश निश्चित किया था,साथ ही ऐसे छात्रों को ही प्रविष्ट किया गया,जो ब्रह्मचर्य से सीधे संन्यासी अथवा साधक बनकर

समाजसेवा का व्रत लेंगे। जैसे-महात्मा बुद्ध के समय में भिक्षुओं को दीक्षित किया जाता था,उसी प्रकार का स्वप्न आपने देखा और उसे साकार करने का पुरुषार्थ किया,जिसका परिणाम स्वामी रामदेव,आचार्य बालकृष्ण जी,आचार्य आर्यनरेश जी,आचार्य राजेन्द्र जी,स्वामी धर्मदेव जी,स्वामी महेश योगी जी जैसी बड़ी श्रंखला है,जो आज पूरे आर्यजगत में सेवारत होकर आचार्य जी की वंश-परम्परा को बढ़ा रहे हैं।आचार्य बलदेव जी एक मिशनरी के रूप में विख्यात हुए। अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन की परम्परा आपकी अध्यक्षता में प्रारम्भ हुई।ब्र0 राजसिंह आर्य भी आप द्वारा ही दीक्षित शिष्य रहे हैं। उनसे मिलकर पूरे भारत का भ्रमण किया। कलकत्ता में आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल के कार्यालय भवन का उद्घाटन किया।प्रत्येक प्रदेश में प्रतिनिधि सभाओं का निर्माण एवं संचालन किया ,अन्य देशों में भी आर्यमहासम्मेलनों का आयोजन आपके कार्यकाल में ही हुआ है।आपने दिल्ली में 2 वार तथा प्रान्तीय स्तर पर भी आपने संगठन को सुदृढ़ किया,सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष पद की शोभा आपने बढ़ाई, सन्त रामपाल सिंह ने जब हरयााणा में आश्रम बनाकर महर्षि दयानन्द सरस्वती और आर्यसमाज के विरुद्ध विषवमन शुरु किया,तब आपने उसके विरोध में जनमानस को तैयार किया और आन्दोलन किया,सड़के जाम कीं उसका परिणाम हुआ कि उसे गिरफ्तार किया। आज वह जेल की हवा खा रहा है,यह आचार्य जी की तपस्या के कारण ही सम्भव हो सका है,इसी प्रकार गोरक्षा के लिए आपने संघर्ष किया,सत्याग्रह किया और बूचड़खाने तुड़वाये,गोरक्षकदल बनाया,हरयाणा गौशाला संघ के आप अध्यक्ष बने और पूरे प्रदेश की गौशालाओं के लिए सरकार से अनुदान तथा सहायता दिलवायी,महर्षि दयानन्द सरस्वती की प्रतिमा बुढ़ाना ,मुजफ्फरनगर, उ0 प्र0 में स्थापित करायी और चौक बनवाकर उसका अनावरण किया,आपके तप और त्याग के आगे सभी नतमस्तक रहते थे,एक समय था, जब ब्र0 इन्द्रदेव(इन्द्रवेष जी) और आपकी जोड़ी युवकों के लिए

हृदय सम्राट के रूप में याद की जाती थी,फिर राजनीति और धर्मनीति पृथक-पृथक अपना वर्चस्व बनाने लगी और एक समय आया,जब आचार्य बलदेव जी भी आर्यसमाज की राजनीति के पुरोधा बनकर शिरोमणि सभा के अध्यक्ष पद पर शोभायमान रहे,उधर ब्र0 इन्द्रदेव संन्यासी बने और राजनीति में सांसद बने पर आर्यसमाज की राजनीति में उनकी तपस्या कुछ कम रह गयी और अध्यक्ष पद पर जाते-जाते मुक्तावस्था को प्राप्त हो गए। ज्ञान और तप का संघर्ष चलता आया है और सदैव तपस्या की ही विजय हुई है।आचार्य जी तपोमूर्ति थे,वेद-व्याकरण के विद्वान् थे,साधक और योगी थे,उनके विषय में आज पूरा आर्यजगत सुपरिचित है। गुरुकुलीय-परम्परा के वे संवाहक थे। जहाँ भी गुरुकुल होता,वहीं जाते और ब्रह्मचारियों को प्रेरणा प्रदान करते थे,गुरुकुल सिरसागंज के प्रथम स्नातक थे, गुरुकुल झज्जर के प्रथम आचार्य थे।फिर तो पूरे देश में आप गुरुकुलीय-परम्परा संचालित करने के लिए नैष्ठिक-दीक्षा देकर आचार्य तैयार करते थे, उनका सपना था कि प्रत्येक गुरुकुल में आचार्य ब्रह्मचारी अथवा संन्यासी हो,तपस्वी हो तभी'अग्निना अग्नि समिध्यते।' अपनी ज्ञानाग्नि से प्रदीप्त कर सकते हैं,आपने पूज्यपाद गुरुदेव म0 देव स्वामी जी और स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती के सपनों को साकार किया है। गुरुकुल झज्जर आज भी आपके आशीर्वाद से अपने उद्देश्य-पूर्ति हेतु प्रयासरत है।उसकी शताब्दी मार्च में हो रही है। इसे भी बिडम्बना ही कहा जाएगा कि मात्र एक-डेढ़ मास पूर्व ही आप हमें छोड़कर चले गए। क्या ही अच्छा होता यदि आपका हमें शताब्दी पर आशीर्वाद मिल पाता, इसे 'प्रभु इच्छा बलीयसि' कहकर ही सन्तोष करना पड़ेगा। आचार्य बलदेव जी हरयाणा के लिए एक वरदान बनकर आये थे , आपकी एक आवाज पर हजारों लोग सहज भाव से एकत्रित हो जाया करते थे। एक वार स्वामी ओमानन्द जी महाराज

शेष पृष्ठ 21 पर

हाय! दिनकर जी क्या लिख गये!

(राजेशार्य आट्टा,1166,कच्चा किला,साढौरा,जिला-यमुनानगर-133204)

प्रिय पाठकवृन्द्! अंग्रेजों ने भारत में अपने साम्राज्य को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए हिन्दू-मुसलमान में तो फूट डाली ही, हिन्दू समाज को भी आर्य द्रविड़ में बाँटा और आर्यों को विदेशी आक्रमणकारी व द्रविड़ों को भारत के आदि (मूल) वासी प्रचारित किया। उस षड्यंत्र का शिकार हुए भारतीय लेखक अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी यही लिख रहे हैं और बच्चे यही पढ़ रहे हैं कि यह देश (भारत) उनकी या उनके पूर्वजों की मूल (जन्म) भूमि नहीं है अर्थात् भारत एक सराय है। इसकी न तो अपनी कोई संस्कृति है, न सभ्यता है, और न इतिहास है। समय-समय पर आक्रमणकारी इसे लूटते रहे और अपनी संस्कृति व सभ्यता इस पर थोपते रहे। इसे जैसे अंग्रेजों ने लूटा, मुसलमानों ने लूटा, उसी तरह आर्यों ने भी आक्रमणकारी के रूप में आकर इसे लूटा था। सोचिये, क्या हम आर्य (आज के हिन्दू, सिक्ख, बौद्ध, जैन आदि) लुटेरों के वंशज हैं? यदि आर्य विदेशी थे, तो उन्होंने अपने तथाकथित मूल देश को छोड़कर यह क्यों कहा?

गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्ग भूते,
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।

(देवता भी यही गान करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्ग के मार्गभूत भारत में जन्म लिया है, वे पुरुष हम देवताओं से भी अधिक धन्य हैं।)

यह कैसी विडम्बना है कि हमें हमारे ही देश में यह पढ़ाया जाए कि वास्कोडिगामा ने भारत की खोज की थी। यह बात पुर्तगाल वाले कहें तो कहें पर हमें तो यही कहना चाहिए कि 1498 ई0 में पुर्तगाल का कोई व्यक्ति प्रथम बार भारत आया था। भारत तो पहले ही संसार में प्रसिद्ध था। भारत का विदेशों से व्यापार होता था, भारत के धर्मप्रचारक पूरे संसार में घूमते थे। जनश्रुति तो यह भी है कि ईसामसीह ने कई वर्ष भारत में शिक्षा प्राप्त की थी। फिर भारत को वास्कोडिगामा क्या खोजता? पर हमें इतने से ही शान्ति नहीं हुई, अपितु इस देश के वासी होकर भी हमने (पं0 जवाहर लाल नेहरू ने) "डिस्कवरी ऑफ इण्डिया" (भारत की खोज) पुस्तक ही लिख दी। (कई वर्ष से यह पुस्तक हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड द्वारा आठवीं कक्षा में हिन्दी विषय में पढ़ाई जा रही है) देश का एक कथित महान नेता ऐसा लिख रहा है, यह मानकर उनकी बातों को देशवासियों ने सम्मान दिया और हम अपनों के धोखे में आकर अपने ही देश में विदेशी बन गये। देश के बहुसंख्यक निवासियों के पूर्वजों को बार-बार विदेशी लिखना और आक्रमणकारी तुर्क, मंगोल, मुगल आदि को भारतीय लिखना भारत की खोज है या आक्रमणकारियों का यशोगान? क्या हमें नहीं पता कि हमें महान किसे कहना चाहिए- हमारे पूर्वजों की स्वतंत्रता, सम्पदा व धर्म को लूटने वाले सिकन्दर, अकबर आदि को या उनसे टकराने वाले पारस, प्रताप आदि को? बाबर बहादुर हो सकता है, काबुल के लिए। हमारे लिए तो क्रूर (पराजित हिन्दुओं के सिर काटकर मीनार बनवाने वाला) आक्रमणकारी ही था। फिर हम विदेशियों की भाषा क्यों बोलें?

एक बार नेता जी सुभाष ने कहा था- "मैं भारतीय हूँ और बिना किसी अतिरिक्त प्रयास किए ही भारत को भलीभांति जानता हूँ इसलिए मुझे 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' या 'हिन्दुस्तान की कहानी' जैसी पुस्तक लिखने की आवश्यकता नहीं है।" अर्थात् नेहरू जी ने शिक्षा-दीक्षा

के स्तर पर अंग्रेज, सांस्कृतिक स्तर पर मुसलमान व सिर्फ जन्म से हिन्दू होकर भारत को खाजने की अपेक्षा सब प्रकार से भारतीय होकर खोजा होता, तो अधिक उपयुक्त होता। अनेकता में एकता का नारा लगाने वाले झूठ बोलते हैं। एकता तो भाषा, भाव व विचारों की समानता में ही हो सकती है।

यह ठीक है कि जो जहाँ पैदा होता है, मरने के बाद उसी मिट्टी में मिलना चाहता है। कई वर्ष (दो बार - 1923 व 1940 ई0) कांग्रेस के अध्यक्ष रहे और स्वतंत्रता के बाद भारत के शिक्षामंत्री बने मौलाना अबुल कलाम आजाद ने मरते समय यदि एसी ही इच्छा (मेरी मिट्टी मक्का में सुपुर्दे खाक कर दी जाए) व्यक्त की हो, तो कोई अश्चर्य की बात नहीं। फिर भी वे 'भारत की खोज' के लेखक की दृष्टि में आदरणीय राष्ट्रवादी हैं, तो वीर सावरकर, सुभाष, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि की उपेक्षा क्यों? बाबर को भी उसकी इच्छा के अनुसार काबुल में दफनाया गया था, फिर भी लेखक ने उसकी प्रशंसा के पुल बाँधे हैं, पर राणा सांगा का नाम भी नहीं लिखा। व्यक्तिगत पसन्द के आधार पर इतिहास नहीं लिखा जाता। जब इतिहास से स्वातंत्र्यवीरों के बलिदानी पृष्ठ यूँ गायब होते रहेंगे, तो पीढ़ियों को राष्ट्र के लिए बलिदान की प्रेरणा कहाँ से मिलेगी? (इसकी समीक्षा शान्ति धर्मी जीन्द ,मो0-09416253826) ने पुस्तक रूप में छापी है) सम्भवतः ''भारत की खोज'' को भारतीय जनता से मान्यता दिलवाने के लिए नेहरू जी ने जनता के आदरणीय कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' से 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक ग्रन्थ लिखवाया। दिनकर जी को इसे लिखने में बहुत परिश्रम करना पड़ा, क्योंकि वे तो मूलतः कवि थे और कवित्व ही उनके यश का कारण था। उन्हें राज्यसभा का सदस्य (1952-63 ई0) बनाना और विदेश यात्राओं का अवसर प्रदान करना कदाचित् इस ग्रन्थ को लिखवाने की पृष्ठभूमि तैयार करना था। 1955 ई0 में महाकवि ने यह ग्रन्थ लिखा और बहुत जल्दी (मार्च 1956) यह छप गया। इसकी प्रस्तावना स्वयं नेहरू जी ने लिखी अर्थात् महाकवि को जिस विषय (भारत मूलतः मिश्रित संस्कृति का देश है) पर लिखना था, वह प्रधानमंत्री जी ने निर्धारित कर दिया।

भारत की जनता अपने प्यारे कवि के बदले दृष्टिकोण से हैरान हो गई और ग्रन्थ की तीखी आलोचना हुई। तृतीय संस्करण (सितम्बर 1962) की भूमिका में दिनकर जी ने लिखा है- "मेरी स्थापनाओं से सनातनी भी दुःखी हैं और आर्यसमाजी तथा ब्राह्मसमाजी भी। उग्र हिन्दुत्व के समर्थक तो इस ग्रन्थ से काफी नाराज हैं।" फिर भी इस ग्रन्थ के लिए नेहरू जी ने 6 नवम्बर 1956 को साहित्य अकादमी पुरस्कार से दिनकर जी को स्वयं सम्मानित किया और अगले महीने ग्रन्थ का पुनः प्रकाश न हुआ। साथ ही महाकवि को पुनः विदेश यात्रा का भी अवसर मिला।

यद्यपि तृतीय संस्करण में बहुत कुछ बदला गया था, तथापि 2008 के संस्करण को भी पूर्णतः निर्दोष नहीं कहा जा सकता। 'संस्कृति के चार अध्याय' ग्रन्थ के कुछ आपत्तिजनक स्थल देखकर पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि नेहरू जी द्वारा प्रदत्त पद व सम्मान के दबाव में आकर दिनकर जी ने निर्दयतापूर्वक सत्य की हत्या की है। देखियेः

1. भारतीय संस्कृति सामासिक है- इसका निर्माण भारत की मूल जाति नीग्रो, आग्नेय, द्रविड़ आदि के साथ आर्यों (विदेशियों) के मिलन से हुआ। (पृ0 4 व अनेक बार)

2. वैदिक ऋषि माँसाहारी थे। (पृ0 33)

3. अथर्ववेद में मारण, मोहन, वशीकरण और उच्चाटन आदि विद्याओं का ही वर्णन है। (पृ0 86)

4. उपनिषदों में बहुत सी बातें परस्पर विरोधी हैं। (पृ0 95)

5. आर्यस्थान, आर्यावर्त्त आदि नाम गलत हैं।

इस देश का सही नाम भारतवर्ष, हिन्दुस्तान या इंडिया ही हो सकता है। इसी प्रकार हिन्दू नाम बहुत व्यापक है और आर्य नाम संकीर्ण है। (पृ0 78)

6. महमूद (गजनवी) की चढ़ाई के समय हिन्दू धूलकणों के समान उड़ गये और जीवित लोगों के मुख में उनकी कहानी मात्र शेष रही। (पृ0 268)

7. सिक्ख धर्म हिन्दुत्व और इस्लाम के मिलने से जनमा था। (पृ0 342, 466, 477)

8. अकबर सचमुच महान था। भारत की एकता की समस्या को उसने ठीक पहचाना था। (पृ0 327)

9. छह शास्त्रों और अठारह पुराणों को उन्होंने (स्वामी दयानन्द ने) एक ही झटके में साफ कर दिया। (पृ0 476)

10. स्वामी जी ने संहिताओं को तो प्रमाण माना, किन्तु उपनिषदों पर वही श्रद्धा नहीं दिखायी।.... युग-युग से पूजित गीता को उन्होंने कोई महत्व नहीं दिया और राम-कृष्ण आदि को तो परम पुरुष माना ही नहीं। (पृ0 478)

11. (वेद में त्रिकाल ज्ञान मानकर) स्वामी जी ने एक नूतन अन्धविश्वास को जन्म दिया। (पृ0 478)

12. केवल वेद को प्रमाण मानने का कुफल यह हुआ कि इतिहासवालों में भी यह धारणा चल पड़ी कि भारत की सारी संस्कृति और सभ्यता वेदवालों अर्थात् आर्यों की रचना है।... स्वामी जी ने आर्यावर्त्त की जो सीमा बाँधी है, वह विन्ध्याचल पर समाप्त हो जाती है। आर्य-आर्य कहने और वेद-वेद चिल्लाने तथा... आज दक्षिण भारत में आर्य-विरोधी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है। (पृ0 479)

13. हमारा धर्म पण्डितों (शास्त्रों के विद्वानों) की नहीं, सन्तों और दृष्टाओं की रचना है।... रामकृष्ण (परमहंस) के आगमन से धर्म की यही अनुभूति प्रत्यक्ष हुई।... उनके समकालीन अन्य सुधारक और सन्त पृथ्वी के वासी थे एवं पृथ्वी से ही वे ऊपर की ओर उठे थे। किन्तु रामकृष्ण (1836-86 ई0) देवी अवतार की भाँति आये। पृथ्वी पर वे भटकती हुई स्वर्ग की किरण के समान आये। (पृ0 490-91)

14. हिन्दू जाति का धर्म है कि वह जब तक जीवित रहे, विवेकानन्द की याद उसी श्रद्धा से करती जाए; जिस श्रद्धा से वह व्यास और वाल्मीकि की याद करती है। (पृ0 504)

15. सर सैयद (अहमद खाँ) में साम्प्रदायिकता थी या नहीं, यह सन्दिग्ध विषय है। वैसे, वे उन्नीसवीं सदी के उन भारतीय महापुरुषों में थे, जो इन क्षुद्र भावनाओं से बहुत ऊँचे थे। (पृ0 583)

16. पाकिस्तान के प्रबल समर्थक सर मुहम्मद इकबाल की विचारधारा पर 21 पृष्ठ लिखे हैं, जबकि किसी राष्ट्रवादी कवि या क्रांतिकारी वीर की विचारधारा के दर्शन भी नहीं। गाँधी जी की अहिंसा और राम नाम का विचित्र गुणगान करके ही सब कुछ समाप्त कर दिया।

17. अकबर ने मुस्लिम-आतंक से पीड़ित हिन्दुओं का पक्ष जिस वीरता से लिया था, जवाहरलाल जी उसी वीरता के साथ मुसलमानों का पक्ष ले रहे हैं।(पृ0 628)

प्रिय पाठकवृन्द! यदि आज भारत का कोई नेता (रघुवंश प्रसाद-राजद, बिहार) भारत के प्राचीन ऋषियों को गोमांसभक्षी बताए और डॉ0 अम्बेडकर का समर्थक बनकर कोई सांसद (मल्लिकार्जुन खड़गे-कांग्रेस) **आर्यों को विदेशी बताकर भारत के गृहमंत्री श्री राजनाथ सिंह का विरोध करे, फिर भी हिन्दुओं में इसके विरुद्ध कोई प्रतिक्रिया न हो, तो लगता है कि षड्यंत्रकारियों द्वारा प्रयुक्त विष अपना प्रभाव दिखा गया है। यह अलग बात है कि डॉ0 अम्बेडकर के नाम का लबादा ओढ़ने वाले सांसद को यह भी नहीं पता कि डॉ० अम्बेडकर साहब आर्यों** को भारत

के मूल निवासी मानते थे, विदेशी नहीं। और दिनकर जी व नेहरू जी ने जिन स्वामी विवेकानन्द की दैवीशक्ति का गुणगान किया है, वे तो आर्यों को विदेशी कहने वालों को अपने सिद्धान्तसहित डूब मरने को कहते थे। फिर भी उल्टा -सीधा लिखकर कोई 'भारत रत्न' बन गया और कोई 'पद्म भूषण' ले गया। ऐसी अन्धेरगर्दी में सत्य की खोज करना भोले विद्यार्थियों के वश की बात नहीं है।

जब गाँधी जी के पटशिष्य आचार्य विनोबा भावे किसी नाटक को प्रमाण मानकर अपनी पुस्तक 'गीता प्रवचन' में ऋषि वशिष्ठ को गोमांसभक्षी लिखते हों; अहिंसा के पुजारी गाँधीजी 'आरोग्य की कुंजी' पुस्तक में दूध को मांसाहार और अण्डे को शाकाहार मानते हों व सम्पूर्ण हिन्दुत्व के विश्वप्रचारक स्वामी विवेकानन्द मांसाहार न त्यागकर भारत के प्राचीन ब्राह्मणों (ऋषियों) पर मांसाहार का लांछन लगाते हुए कहते हों- "इसी भारत में कभी ऐसा समय था, जब कोई ब्राह्मण, बिना मांस खाये ब्राह्मण न रह जाता था; तुम वेद पढ़ो, देखोगे, जब संन्यासी या राजा मकान में आता था, तब किस तरह और कैसे बकरों और बैलों के सिर धड़ से जुदा होते थे।" (स्वामी विवेकानन्द जी से वार्तालाप, पृ0 48)

तो फिर इतिहास बिगाड़ने का दोष केवल अंग्रेजों को क्यों दिया जाये? क्या उपरोक्त सभी महापुरुष और उन्हें बड़े-बड़े सम्मान से लादने वाले हम सब इसके दोषी नहीं हैं? माना कि अंग्रेजों ने धूर्तता की थी, पर हमने उसे क्यों ढोया? स्वामी विवेकानन्द प्रो0 मैक्समूलर की खुशामद करके उनसे अपने गुरु रामकृष्ण की जीवनी तो लिखवा गये, पर कभी आर्यों के विदेशी होने के उनके सिद्धान्त को बदलने की बात नहीं कही। नेहरू जी अपनी पुस्तकों में विदेशी लेखकों के प्रमाण बिना किसी तर्क-वितर्क के लिखते रहे। दिनकर जी ने कुछ ऊहापोह तो की, पर स्थापना उन्हीं के विचारों की रखी। जैसे- आर्यों के विषय में कई बार लिखा है- आर्य और द्रविड़, दोनों प्रकार के लोग, इस देश में अनन्त काल से रहते आये हैं और हमारे प्राचीनतम साहित्य में इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि ये दोनों जातियाँ बाहर से आयीं अथवा इन दोनों के बीच कभी लड़ाइयाँ भी हुई थीं। (पृ0 10)

इससे इस बात पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है कि द्रविड़ों को आर्यों से भिन्न मानना कितना भ्रामक और मूर्खतापूर्ण है। (पृ0 37)

फिर भी लगभग 20 बार आर्यों को विदेशी लिखा है। आर्य या वेद विषय में किसी संस्कृतग्रन्थ या आर्यसमाज के संस्थापक व वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् स्वामी दयानन्द को कहीं प्रमाण नहीं माना। साथ ही स्वामी दयानन्द के विषय में रामकृष्ण परमहंस के विचार लिखे हैं- "दयानन्द से भेंट करने गया।... वे वैखरी अवस्था में थे। रात-दिन लगातार शास्त्रों की ही चर्चा किया करते थे। अपने व्याकरण-ज्ञान के बल पर उन्होंने अनेक शास्त्र-वाक्यों के अर्थ में उलट-फेर कर दिया है। 'मैं ऐसा करूँगा, मैं अपना मत स्थापित करूँगा' ऐसा कहने में उनका अहंकार दिखायी देता है।" दिनकर जी ने इस पर कोई टिप्पणी भी नहीं की। इसका अर्थ है कि ये उन्हीं के विचार हैं, जो परमहंस के माध्यम से प्रकट हुए। अन्यथा योगी अरविन्द या रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचार भी दिये जा सकते थे, जबकि स्वामी विवेकानन्द के विषय में दिये हैं। योगी अरविन्द ने ऋषि दयानन्द की प्रशस्ति में लिखा है-

"वह दिव्य ज्ञान का सच्चा सैनिक, विश्व को प्रभु की शरण में लाने वाला योद्धा, मनुष्यों और संस्थाओं का शिल्पी तथा प्रकृति द्वारा आत्मा के मार्ग में उपस्थित की जाने वाली बाधाओं का निर्भीक और शक्तिशाली विजेता था।..." "वेदों की व्याख्या के विषय में मेरा पूरा विश्वास है कि चाहे इनकी अन्तिम व्याख्या कुछ भी हो, दयानन्द उसके सत्यसूत्रों के प्रथम आविष्कर्त्ता के रूप

में स्मरण किये जायेंगे। यह दयानन्द की सत्य का साक्षात्कार करने वाली दृष्टि ही थी, जिसने पुराने अज्ञान तथा लम्बे युग से चली आती नासमझी को बीच से चीर कर सत्य को सीधे देखा और अपनी दृष्टि को वहाँ केन्द्रित किया, जो महत्त्वपूर्ण था।

और रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है- "मेरा सादर प्रणाम हो, उस महान् गुरु दयानन्द को, जिसकी दृष्टि ने भारत के आत्मिक जीवन के सब अंगों को प्रदीप्त कर दिया। जिस गुरु का उद्देश्य भारतवर्ष को अविद्या, आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्त्व के अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता की जागृति में लाना था; उसे मेरा बारम्बार प्रणाम है।"

चलो, व्यक्ति की अपनी पसन्द है, दिनकर जी ने नहीं लिखा। पर जब यही पसन्द अपनाते हुए योगी अरविन्द ऋषि दयानन्द के वाक्य 'वेदों में विज्ञान का भी मूल है' के समर्थन में कहते हैं कि यह अत्युक्ति नहीं, अल्पोक्ति है, तो दिनकर जी को परेशानी क्यों हुई? अंग्रेजों की नौकरी करते हुए जनता के देशभक्त कवि ने लोगों को अंग्रेजों के पक्ष में लड़ने का प्रचार किया। नेहरू ने सांसद बनाया, तो कवि ने आर्यो और उनकी संस्कृति के विदेशी होने का प्रचार किया। दिनकर जी के संकीर्ण दृष्टिकोण की पुनरावृत्ति करते हुए 2003 ई0 (भाजपा के शासनकाल) में एन0सी0ई0आर0टी0 द्वारा बारहवीं कक्षा के लिए प्रकाशित इतिहास पुस्तक में रामकृष्ण व स्वामी विवेकानन्द का गुणगान व आर्यसमाज का अवमूल्यन करते हुए नूतन अन्धविश्वास और आर्यावर्त्त की समीक्षा विषय ज्यों का त्यों लिखा तथा यह भी लिखा- "साथ ही इन (स्वामी दयानन्द) के अनुयाइयों ने सिद्धान्तों के मंडन के स्थान पर दूसरे मतों के खंडन करने की प्रवृत्ति ज्यादा विकसित की।" (पृ0 121)

प्रबुद्ध पाठकों को कवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा लिखित पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' का दिग्दर्शन इसलिए करवाया है ताकि भविष्य में इतिहास पर होने वाले अपनों के भी आक्रमण से सावधानी रखी जाए। धर्म के आधार पर देश को बाँटकर भी इसे धर्मनिरपेक्ष (पंथनिरपेक्ष) बनाने वाले नेताओं ने अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों को विशेष नागरिक बनाकर जो अदूरदर्शिता दिखाई थी, उसी को आगे बढ़ाते हुए वर्तमान जहरीली राजनीति ने आज हिन्दू समाज (भटका हुआ आर्य) के अंगों (बौद्ध, जैन, सिक्ख आदि-बुद्ध, महावीर, गुरु तेग बहादुर आदि को हिन्दू आदरणीय मानता है) को भी अलग-अलग कर अल्पसंख्यक घोषित किया जा रहा है। सुना है स्वामी विवेकानन्द (रामकृष्ण परमहंस) के शिष्य भी स्वयं को अल्पसंख्यक घोषित करवाने के लिए प्रयासरत हैं।

पूरा हिन्दू समाज कहीं तो गुरुओं के खेमों में बँटा है, कहीं जाति के घेरे में घिरा है। वैदिक संस्कृति के चिह्न (गाय, ऋषि, वेद, आर्य, योग आदि) पराए बन गए हैं। अतः इन पर आक्रमण होने से किसी हिन्दू को पीड़ा नहीं होती। अतीत का सत्य तो यही है कि महात्मा बुद्ध के काल तक इस देश में 'आर्य' शब्द चलता था। अतः बुद्ध, महावीर आदि के वर्तमान शिष्यों के पूर्वज आर्य थे। इस्लाम के आगमन पर आर्य हिन्दू कहलाने लगे। अतः इस काल में मुस्लिम बने लोगों के पूर्वज हिन्दू या आर्य कहे जा सकते हैं। पूजा पद्धति बदलने से पूर्वज तो नहीं बदलते। भारत का कोई भी सम्प्रदाय कुछ सुविधाओं के लाभ हेतु अपने ही देश में अल्पसंख्यक (असहाय) न बने। ईश्वर हम पर कृपा करे कि हम राष्ट्रहित में बाधा डालने वाली मत, मजहब , जाति की दीवारों को तोड़ सकें। इसी उद्देश्य से यह समीक्षा लिखी जा रही है। किसी की विद्वत्ता को चुनौती देना हमारा उद्देश्य नहीं है।

नहीं किसी से वैर, किसी का पक्ष नहीं है।
मिट जाए अन्याय, धर्म का लक्ष्य यही है।।

❑❑

पौराणिक शिव की कल्पना वेदों पर आधारित

(उत्तरा नेरूर्कर,बंग्लौर,मो0:-09845058310)

हम सुनते आए हैं कि पुराणों की चित्र-विचित्र कहानियाँ वेदों के अर्थों का एक विकृत चित्रण हैं- उनका आधार वेद ही हैं परन्तु अर्थों को कहीं का कहीं ले जाया गया है। आज तक मैंने अन्य कल्पनाओं का आधार तो वेदों में नहीं पाया, जैसे विष्णु, सरस्वती, लक्ष्मी, आदि, जिनके नाम तो वेदों में पाए जाते हैं, परन्तु अन्य और कोई भी लक्षण नहीं पाया जाता, जैसे क्षीरसागर, हंस की सवारी, धन की वर्षा, आदि; परन्तु शिव की कल्पना का स्रोत मुझे मिला, जहाँ कि कई लक्षणों का आधार स्पष्टतः देखा जा सकता है। उनका विवरण मैं इस लेख में दे रही हूँ।

शिव की कल्पना के मन्त्र यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय में पाए जाते हैं। उनमें से पहला यह प्रसिद्ध मन्त्र है, जो कि श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी पाया जाता है-

या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि।।

यजु0।। 16/2।।

अर्थात् हे रुद्र और सत्योपदेशों से सुख पहुँचाने वाले परमात्मन्! जो तेरी शिवा=कल्याणकारी, अघोरा=उपद्रवरहित, अपापकाशिनी=धर्म का प्रकाश करने वाला काया है, उस शान्तिमय शरीर से आप हमें देखे, अर्थात् हमारे लिए कल्याणकारी आदि होइए और अपने उपदेशों से हमें सुखों की ओर अग्रसर कीजिए।

यहाँ के संकेतात्मक शब्दों को देखते हैं। पहला शब्द 'रुद्र'। इससे शिव की क्रोधी छवि बनाई गई। दूसरा शब्द 'शिवा' (स्त्रीलिंग) वैसे तो 'तनू' अर्थात् शरीर का विशेषण है, तथापि उस को शिव की कल्पना में समाहित कर लिया गया। तीसरा शब्द है 'गिरिशन्त'। महर्षि दयानन्द ने इसका अर्थ किया है- यो गिरिणा मेघेन सत्योपदेशेन वा शं सुखं तनोति तत्सम्बुद्धौ। गिरिरिति मेघनाम (निघण्टु 1/10)- अर्थात् गिरि=मेघ या (गृ निगरणे/शब्दे/विज्ञाने से) सत्योपदेश से (शम्=) सुख की (तन्=) वृद्धि करने वाला। यह परमात्मा के लिए सिद्ध हुआ। परन्तु यदि हम 'गिरिशन्त' का अर्थ करें 'गिरि पर शयन करने वाला', तो हमें कैलाश पर्वत की कल्पना का आधार मिल जाता है। तीसरे मन्त्र में 'गिरित्र' शब्द पढ़ा गया है, जिसको 'गिरि पर रहना वाला' के अर्थ में समझा जा सकता है।

तीसरा मन्त्र यह भी कहता है-

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे... (यजु० 16/3)- हे गिरिशन्त! जो बाण आप हाथ में छोड़ने के लिए तैयार रखे हैं...। यहां से शिव-धनुष की कल्पना हम देख सकते हैं। 9-14 वें मन्त्रों में भी धनुर्धारी, निषंगधारी, हाथ में बाण छोड़ने को उद्यत शिव का कथन है। और इक्यावनवे मन्त्र में तो हमें धनुष का नाम भी मिल जाता है- मीढुष्टम शिवतम शिवो ... पिनाकम्बिभ्रदा गहि- हे शिव! आप पिनाक अर्थात् धनुष धारण करके (हमारी रक्षा के लिए) आएँ।

चौथा मन्त्र कहता है-

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳसुमना असत्।।

यजु0।। 16/4।।

अर्थात् हे गिरिश! हम आपकी कल्याणकारी वाणियों से स्तुति करते हैं, जिससे कि आप प्रसन्न होकर सारे जगत् को यक्ष्म रोग से मुक्त कर दें। यह तो वस्तुतः पुराण का ही वचन लगता है। इससे शिव की महावैद्य

होने की कथा निकली और यहाँ पर प्रयुक्त 'गिरिश' शब्द का अर्थ पुनः है 'गिरि पर लेटने वाला'।

पाँचवें मन्त्र में पुनः भिषक् होने का कथन है और यहां सर्पो का भी पदार्पण हो जाता है!-

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्।
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योधराचीः परा सुव।। यजु. 16/5।।

अर्थात् हे प्रथम दिव्य भिषक्! आप उत्तम वैद्यक शास्त्र को पढ़ाएँ, जिससे कि सारे सर्पों का निवारण हों और दुर्दशा करने वाली औषधियाँ दूर रहें। यहाँ 'अहीन्' का अर्थ महर्षि ने किया है- सर्पवत् प्राणान्तकान् रोगान्- अर्थात् सर्प के समान प्राण-लेवा रोग। तथापि यहाँ से ही शिव का सर्पो के साथ सम्बन्ध रचा गया, यह अनुमान लगाया जा सकता है।

सातवें मन्त्र में नीलकण्ठ का संकेत प्राप्त होता है-

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।
उतैनं गोपा अदृश्रन्नुदहार्य्यः स दृष्टो मृडयाति नः।।
यजु0।। 16/7।।

अर्थात् जो ये नीले कण्ठ वाला, गहरा लाल नीचे को सरकता है, उसे गोपा और पानी ले जाने वाली स्त्रियां देखती हैं; वह दिख जाने पर हमें प्रसन्न करे। यहां 'नीलग्रीव' 'नीलकण्ठ' का ही पर्याय है। 'विलोहित' नाम भी शिव का प्रसिद्ध है।

आठवें मन्त्र में अन्य कुछ विशेषण प्राप्त होते हैं-

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे।
अथो येऽअस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः।।
यजु0।। 16/8।।

अर्थात् नमन हो नीलकण्ठ के लिए, सहस्र आँखों वाले के लिए और वीर्यवान् के लिए। और जो उसके वीर्यवान् (अनुचर) हैं, उनको भी मैं नमन करता हूँ। यहाँ हम शिव के सहस्राक्ष होने और वीर्यवान् होने की कल्पना पाते हैं। वैसे तो शिव का त्रिनेत्र रूप अधिक प्रसिद्ध है, परन्तु उनको सहस्राक्ष रूप में भी कहा गया है। उसके अनुचर (किंकर) भी यहाँ दृष्टिगोचर हो जाते हैं। क्या 'अकर' पद जो मन्त्र में पढ़ा गया है, उसी से 'किंकर' शब्द निकला हो, इसकी भी सम्भावना है।

दसवें मन्त्र में हमें शिव की प्रसिद्ध जटाएँ भी मिल जाती हैं, जहाँ 'कपर्द्दिन' शब्द का अर्थ 'प्रशंसित जटाजूट धारण करने वाला' है। यह शब्द आगे के मन्त्रों में भी उपलब्ध होता है।

ग्यारहवें और बारहवें मन्त्रों में 'हेति=वज्र' धारण करने वाला भी बताया गया है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है वज्र को शिव से नहीं, अपितु इन्द्र से जोड़ा जाता है। सो, यहाँ हम पुराणों से प्रचलित परिकल्पना से भेद पाते हैं। अन्य आयुधों का भी मन्त्रों में वर्णन मिलता है। उनमें से विशेष है-

अवतत्य धनुष्ट्वं सहस्राक्ष शतेषुधे।
निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव।।
यजु0।। 16/13।।

अर्थात् हे सहस्राक्ष! हे शत बाणों को धारण करने वाले! धनुष को खींचकर और भाले की नोक को पैना करके, तुम हमारे लिए शिव और सुमन हो (हम पर उन्हें मत छोड़ो)! यहाँ त्रिशूल को तो नहीं कहा गया है, परन्तु भाले से सम्भवतः त्रिशूल निष्पन्न हुआ हो, ऐसा प्रतीत होता है।

आगे हम पाते हैं-

पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च।
यजु0।। 16/28।।

पशुपति, नीलकण्ठ, कृष्णकण्ठ को नमन। इससे शिव का पशुपति रूप विकसित हुआ, ऐसा प्रतीत होता है।

उन्तीसवें मन्त्र में उपर्युक्त मुख्य सभी विशेषण
शेष पृष्ठ 18 पर

गंगा तट पर पादरी स्कॉट की स्वामी दयानन्द से हुई भेंट और अन्वेषणीय विषय

(भावेश मेरजा,भरुच-गुजरात,मो0:-09879528247)

'परोपकारी' पाक्षिक के दिसम्बर (द्वितीय) 2015 के अंक में प्राध्यापक श्री राजेन्द्र जी जिज्ञासु ने अपने 'कुछ तड़प-कुछ झड़प' लेख के आरम्भ में 'ऋषि-जीवन विचार' के अन्तर्गत पादरी टी०जे० स्कॉट के सम्बन्ध में लिखा है-''प्रश्न उठता है, वह गोरा पादरी (कि जिसका संकेत देवेन्द्रनाथ जी मुखोपाध्याय एवं हरविलास जी सारदा रचित महर्षि के जीवनचरितों में किया गया है) कौन था, इसका पता हम न लगा सके।''

इसके आगे जिज्ञासु जी ने लिखा है- "राहुल जी (अकोला) ने लण्डन से जो स्रोत प्राप्त किये हैं, उससे सब कुछ सुस्पष्ट हो गया है और ऋषि जीवन से सम्बन्धित पर्याप्त और ठोस नई जानकारी मिलती है। इस गोरे पादरी का नाम था श्री टी0जे0 स्कॉट। यह भेंट काशी शास्त्रार्थ से एक वर्ष पूर्व 29 अक्टूबर 1868 के दिन काकौड़ा के मेले पर हुई।"

अनावश्यक टिप्पणी

इस लेख में जिज्ञासु जी ने आर्य समाज के प्रसिद्ध लेखक डॉ0 भवानीलाल भारतीय जी के सम्बन्ध में लिखा है- "भारतीय जी ने अपने एक ग्रन्थ 'महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी' में स्कॉट के ग्रन्थ का जो अवतरण दिया है, वह प्रमाण मूल ग्रन्थ से बहुत भिन्न है। प्रतीत होता है कि जिस पुस्तक से मान्य भारतीय जी ने इस अवतरण को लिया है, उसी में कुछ गड़बड़ हो गई होगी। सम्भव है, असावधानी से भारतीय जी से ही इसका कुछ अंश छूट गया हो।"

जिज्ञासु जी की उक्त बात सत्य नहीं है। क्योंकि मैंने पादरी स्कॉट रचित मूल अंग्रेजी ग्रन्थ 'Missionary Life Among the Villages in India' से भारतीय जी के लेख का ठीक-ठीक मिलान किया है। भारतीय जी के द्वारा 'महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी' ग्रन्थ में दिया गया उद्धरण स्कॉट के उपर्युक्त मूल ग्रन्थ के अनुसार ही है। इतना ही नहीं, स्वयं जिज्ञासु जी ने अपने इस लेख में स्कॉट के एतद् विषयक वाक्य अपने इसी लेख में उद्धृत किए हैं। उनसे भी मिलान करने से इस बात का पता चलता है कि भारतीय जी द्वारा दिया गया उद्धरण निर्दोष है। अतः भारतीय जी के इस ग्रन्थ पर की गई जिज्ञासु जी की उपर्युक्त टिप्पणी अनावश्यक ही नहीं, अनुचित भी है। हाँ! भारतीय जी को स्कॉट के ग्रन्थ का जितना अंश अपनी उपरोक्त पुस्तक में प्रस्तुत करना आवश्यक लगा, उतना उन्होंने उद्धृत किया है। परन्तु न तो उन्होंने स्कॉट के मूल ग्रन्थ से भिन्न प्रमाण दिया है और न ही इसमें कोई असावधानी बरती है।

स्कॉट ने स्वामी जी को भेंट की न्यू टेस्टामेन्ट की एक प्रति

अपने लेख में जिज्ञासु जी ने आगे लिखा है- "श्री भारतीय जी ने अपने अवतरण में पादरी जी द्वारा ऋषि को नवविधान (New Testament) भेंट करना भी लिखा है। यह ठीक होगा, परन्तु इंग्लैण्ड से प्राप्त अवतरण में ऐसा नहीं मिलता।"

जिज्ञासु जी ने ऐसा लिखकर भारतीय जी के लेखन के सम्बन्ध में पाठकों के मन में अनावश्यक संशय

उत्पन्न करने का प्रयास किया है। जबकि भारतीय जी ने ठीक ही लिखा है। यह बात स्वयं स्कॉट ने अपने उक्त ग्रन्थ में लिखी है। स्कॉट का यह ग्रन्थ 1876 में Cincinnati: Hitchcock and Walden, New York: Nelson & Phillips द्वारा प्रकाशित हुआ था। इस में पृष्ठ 168 पर स्कॉट ने लिखा है-

"I left a copy of the New Testament with him (i.e. 'Fakeer' - Swami Dayananda), requesting his careful perusal of it, and that he mark the love with which it is filled, and which it inspired in those who received and trusted in Jesus of Nazareth."

अर्थात् "मैंने उस 'फकीर'-स्वामी दयानन्द को न्यू टेस्टामेन्ट की एक प्रति भेंट की।"

डॉ0 जे0टी0एफ0 जॉर्डन्स ने भी स्वामी जी विषयक अपने प्रसिद्ध अंग्रेजी ग्रन्थ 'Dayanand Sarasvati - His Life and Ideas' में अमेरिकन विद्वान् जेम्स रीड ग्राहम के शोध ग्रन्थ के आधार पर यही बात लिखी है कि स्कॉट ने स्वामी जी को न्यू टेस्टामेन्ट की प्रति भेंट की थी। (द्रष्टव्य पृ0 51, संस्करण 1997) इतना ही नहीं, उसी अध्याय में जॉर्डन्स ने स्कॉट के स्वामी जी से गंगा तट पर काकौड़ा के मेले पर हुई भेंट सम्बन्धित विवरण संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है। ध्यातव्य है कि जॉर्डन्स के इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण 1978 में प्रकाशित हुआ था।

भारतीय जी के विभिन्न ग्रन्थों में स्कॉट विषयक उल्लेख भारतीय जी ने भी 1986 में प्रकाशित अपने 'महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी' ग्रन्थ में स्कॉट के ही उपर्युक्त ग्रन्थ का उद्धरण देकर यही दर्शाया है कि गंगा तट पर साधु दयानन्द से भेंट करने वाले पादरी और कोई नहीं, स्कॉट ही थे। भारतीय जी ने अपने इस ग्रन्थ में इस पादरी का पूरा नाम लिखा है- टामस जेफरसन स्कॉट (पादरी टी.जे. स्कॉट)। इससे भी आगे बढ़कर भारतीय जी ने 1993 में प्रकाशित अपने 'मैंने ऋषि दयानन्द को देखा' एवं 2010 में प्रकाशित 'स्वामी दयानन्द और भारत में ईसाइयत' ग्रन्थों में भी पादरी स्कॉट रचित उपर्युक्त अंग्रेज़ी ग्रन्थ के आधार पर उसकी स्वामी जी से हुई इस भेंट का वर्णन किया है। भारतीय जी ने 'स्वामी दयानन्द और भारत में ईसाइयत' ग्रन्थ में पृष्ठ 31 से लेकर पृष्ठ 35 पर्यन्त ककौड़ा के गंगा स्नान के मेले में स्वामी जी से हुई पादरी टी0जे0 स्कॉट की भेंट का सम्पूर्ण वर्णन उसी के 'मिशनरी लाइफ एमंग दि विलेज़ेज इन इण्डिया' ग्रन्थ में दिए गए वृत्तान्त को हिन्दी में अनूदित कर प्रस्तुत किया है। भारतीय जी ने अपने एक अन्य शोधपूर्ण ग्रन्थ -'स्वामी दयानन्द सरस्वती - पश्चिम की दृष्टि में' (प्रकाशन वर्ष 2001) में भी पादरी स्काट के स्वामी जी विषयक इसी संस्मरण को परिशिष्ट-1 के रूप में समाविष्ट किया है। 'नवजागरण के पुरोधा' के नए संस्करण में तथा पण्डित लेखराम जी संगृहीत जीवनचरित्र (संस्करण 2007) में भी भारतीय जी ने पाद टिप्पणी के माध्यम से स्कॉट की इस भेंट का तथा उसका संक्षिप्त परिचय दिया है।

यह कैसी साहित्यिक सेवा?

अपने इतने सारे ग्रन्थों में भारतीय जी ने स्कॉट की स्वामी जी से हुई इस भेंट का वर्णन किया है। फिर भी जिज्ञासु जी ने अपने लेख में ऐसा प्रदर्शित करने की चेष्टा की है कि जिससे पाठकों को ऐसा लगे कि 'लण्डन से प्राप्त स्रोतों' एवं 'इंग्लैण्ड से प्राप्त अवतरण' के आधार पर वे एतद् विषयक कोई बड़ी नई शोध उद्घाटित कर रहे हैं! परन्तु मुझे उनके पादरी स्कॉट विषयक इस आलोच्य लेख में कोई 'ठोस नई जानकारी' नजर नहीं आई। मुझे यह लेख अनावश्यक लगा। मैं नहीं समझ पाया कि ऐसे लेख से आर्य समाज का क्या भला होने वाला है? भारतीय जी जैसे मूर्धन्य आर्य

लेखक के लेखन कार्य का इस प्रकार अवमूल्यन करने की प्रवृत्ति किस प्रकार की साहित्यिक सेवा है?

स्कॉट के ग्रन्थ का शुद्ध नाम

अपने लेख में जिज्ञासु जी ने स्कॉट के ग्रन्थ का शुद्ध नाम 'Missionary Life Among the Villages in India' बताया है,जो बिल्कुल ठीक है।परन्तु जॉर्डन्स ने एवं कई स्थान पर भारतीय जी ने भी इस ग्रन्थ का नाम 'Missionary Life in the Villages of India' लिखा है। ध्यातव्य है कि स्कॉट के इस ग्रन्थ्र में प्रत्येक युग्म संख्या वाले पृष्ठ के ऊपर हैडर में पुस्तक का नाम 'Missionary Life in India' ही छपा है।

पादरी का शुद्ध नाम

यहाँ यहा भी ध्यातव्य है कि जिज्ञासु जी द्वारा अनूदित एवं सम्पादित मास्टर लक्ष्मण जी आर्योपदेशक रचित 'महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्पूर्ण जीवन-'चरित्र' में प्रायः सभी स्थान पर इस पादरी का नाम टी0जे0 स्कॉट के स्थान पर अशुद्ध नाम टी0जी0 स्कॉट ही दिया गया है। भारतीय जी द्वारा सम्पादित पण्डित लेखराम जी संगृहीत जीवनचरित्र (संस्करण 2007) में शुद्ध नाम दिया गया है।

अन्वेषणीय क्या है?

अन्वेषणीय तथ्य तो ये होने चाहिए कि किस आर्य विद्वान् की पादरी स्कॉट के इस ग्रन्थ पर सर्वप्रथम दृष्टि पड़ी? स्कॉट के इस ग्रन्थ में वर्णित स्वामी दयानन्द विषयक सामग्री का अपने लेखन कार्य में सर्वप्रथम उपयोग करने वाला आर्य विद्वान् कौन था? गंगा तट पर काकौड़ा के मेले पर जिस अर्धनग्न फकीर से पादरी स्कॉट की भेंट हुई, वह फकीर और कोई नहीं, परन्तु स्वामी दयानन्द थे- इस रहस्य का सर्वप्रथम प्रकाश करनेवाला विद्वान् कौन था? क्या इसका श्रेय जेम्स रीड ग्राहम को जाता है? कालान्तर में इसी पादरी स्कॉट के साथ स्वामी जी के दो शास्त्रार्थ हुए हैं- चांदापुर के मेले में और बरेली में। क्या इन शास्त्रार्थों के बारे में भी स्कॉट ने अपने कोई संस्मरण अन्यत्र कहीं लिखे हैं? इत्यादि।

❑❑

पृष्ठ 15 का शेष

पाए जाते हैं-

नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च।। यजु० 16/29।।

फिर यह प्रसिद्ध मन्त्र-

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।।

यजु0 16/41।।

स्पष्टतः, यहाँ से शिव के अन्य नाम 'शम्भु' और 'शंकर' लिए गए हैं। 'मयोभव', 'मयस्कर' और 'शिवतर' नाम इतने लोकप्रिय नहीं हुए।

त्रिनेत्र, डमरू, पार्वती, गंगा, नन्दी, लिङ्ग, आदि की कल्पनाएँ इस अध्याय में तो नहीं प्राप्त होती हैं। ये कहाँ से आई हैं, क्या इनका कोई वैदिक आधार है भी या ये केवल पुराण-कर्ता की बुद्धि से उत्पन्न हुई हैं, यह अन्वेषणीय है।

इस प्रकार कम-से-कम एक पौराणिक व्यक्तित्व के अनेकों लक्षणों का वैदिक आधार हम पाते हैं। विद्वज्जनों को यदि अन्य देव-देवताओं, यथा विष्णु, ब्रह्मा, लक्ष्मी, सरस्वती आदि के भी क्षीर-सागर, आदि, लक्षण किन्हीं अन्य वेद-मन्त्रों में उपलब्ध होने का ज्ञान हो, तो अवश्य बताने की कृपा करें।

शिवरात्रि

(डॉ0 लखन प्रसाद शास्त्री,ई-15एम0आई0जी0फ्लेट,प्रसाद नगर-।। नई दिल्ली-5)

सत्य मार्ग के सत्य-पथिक तुम सत्य धर्म को अपनाओ,
अबतक तुम जो पा न सके "सत्यार्थ प्रकाश" पढ़कर पाओ।
वेद-शास्त्र एक ज्ञान-कोष है, धर्म-ज्ञान है जिससे होता,
नहीं दूसरा मार्ग है कोई, जिससे नष्ट अज्ञान है होता।
शिव शंकर के परम भक्त हों, पथ ऐसा तुम अपनाओ,
जिससे नष्ट अज्ञान है होता, ब्रह्म तत्व का ज्ञान भी होता।
भक्तो गीत सदा सब गायें, वैदिक धर्म महान् की,
युग -युग से जो निधि रही है, सद्विद्या सद्ज्ञान की।

चतुर्दशी के अंधकार में क्यों भटक रहे नादान हो,
चेतन हो कर पूज रहे हो, निश्चेतन निष्प्राण को।
हे! सत्य-पथिक क्यों भूल गये हो, परमपिता भगवान को,
जगपालक वह जगन्नियंता, जिसने रचा संसार को।
आओ भक्तो ज्योति जलायें वैदिक धर्म महान की,
युग- युग से जो निधि रही है, सद्विद्या सद्ज्ञान की।

राष्ट्र हमारा भारत प्यारा सब का रहा गुरुद्वार है,
वेदज्ञान का दीप जलाकर सबका किया उद्धार है।
कल्पतरु यह वेदवृक्ष है, श्रेष्ठ ज्ञान भंडार है।
गाते रहते ऋषि-मुनि और गाता सब संसार है।
दुर्भाग्य हमारा भूलकर उसको पूजा करें पाषाण की,
युग-युग से जो निधि रही है, सद्विद्या सद्ज्ञान की।

आदित्य, अंगिरा, अग्नि, वायु, गौतम, कपिल, कणाद, हुए,
व्यास, मनु, पातंजलि, शंकर, मैत्रेयी, गार्गी महान हुए।

राम, कृष्ण, गांधी और नेहरू, राजेन्द्र, लाल, सुभाष हुए,
महावीर, गौतम, कबीर, विवेकानन्द, रविदास हुए।
इसी भूमि पर तेगबहादुर, बीर हकीकत राय हुए,
खातिर देश के सत्यव्रती सब वीर शूर बलिदान हुए।
वैदिक धर्म की रक्षा हेतु दयानन्द ने विषपान किया,
खाकर गोली सीने पर श्रद्धानन्द ने बलिदान दिया,
सत्य धर्म के खातिर सबने लगा दी बाजी प्राण की।
युग-युग से जो निधि रही है सद्विद्या सद्ज्ञान की,
आओ भक्तो ज्योति जलायें वैदिक धर्म महान की।

प्रतिमा क्या है जिसको हमने इन हाथों से उभारा है,
कलाकार की शिल्पकला है सुन्दर अति नजारा है।
क्या प्राणहीन पाषाण कभी चेतन का बना सहारा है?
लेकिन मूढ़ पंडे हैं कहते कितनों को इसने तारा है।
प्राण-प्रतिष्ठा से क्या पत्थर बन सकता भगवान है,
यह तो कर्मफलों का चक्कर देता, जो फलदान है।
प्रतिमा-पूजन वेदविरुद्ध है, यह लीला पुराण की,
युग-युग से जो निधि रही है, सद्विद्या सद्ज्ञान की।

कलियुग में एक ऋषि हुआ इस गूढ़ तत्त्व को पहचाना,
वैदिक-धर्म विस्तार किया और ज्ञान का डंका बजवाया।
अंध-भक्ति का अंधकार, अज्ञान, अस्पृश्यता, बाल-विवाह,
सभी कुरीतिओं की जड़ उसने प्रतिमा-पूजन बतलाया।
करें वन्दना उस गुरुश्रेष्ठ की निर्मल निश्छल विद्वान् की,
युग-युग से जो निधि रही है, सद्विद्या सद्ज्ञान की।

शिवरात्रि के पावन क्षण में, सत्यं शिवं का ध्यान करें,
रचा है जिसने इस दुनियाँ को उसी का बस गुणगान करें।
महाशक्ति वह व्याप्त सभी में एक ही सर्वाधार है,
सच्चिदानन्द चेतन स्वरूप है हम उसके आभार हैं।

वही शिव और ब्रह्म वही है विष्णु रूप में व्याप्त वही है,
अग्नि वही है, वरूण वही है जीवात्मा में प्राण वही है।
वह अतीन्द्रिय अगोचर है अन्दर-बाहर सदा वही है,
बहुत दूर और पास वही है, निराकार निर्विकार वही है।
वह कवि मनीषी पापमुक्त है, स्वायम्भुव पर कायमुक्त है,
वह विद्यमान सर्वत्र सदा अवतरण दोष से सदामुक्त है।
परमाणु में शक्ति वही है नक्षत्रों में चमक उसी से
सत्यं शिवं सुन्दरं वही है जड़-चेतन में प्राण उसी से।
केवल करें उपासना उसकी नहीं मूर्ति पाषाण की,
युग-युग से जो निधि रही है, सद्विद्या सद्ज्ञान की।

"ओ३म्" अजन्मा अनन्तरूप में अदृश्य अमूर्त्त महान् है,
जन्म-मृत्यु से सदा मुक्त है वह तो महतो महीयान् है।
वह तो ज्ञान गुणों का सागर-प्रतिमा कैसे बनेगी उसकी,
ज्ञान प्रकाश अवतरित है होता अद्भुत, अनुपम छवि है उसकी।
उसी "ओ३म्" का जाप करें जो सब का दयानिधान है,
युग-युग से जो निधि रही है, सद्विद्या सद्ज्ञान की।

आओ भक्तो शान बढ़ायें वैदिक धर्म महान की,
युग-युग से जो निधि रही है, सद्विद्या सद्ज्ञान की।

❑❑

पृष्ठ 8 का शेष

ने स्वयं ही कहा था कि आचार्य बलदेव जी की तपस्या मेरे से ऊपर है।''सच्चे गुरु के सच्चे पारखी'' पुस्तक में आपकी दीक्षा का पूरा विवरण आता है। उस समय का दृश्य बड़ा ही मनोरम है,यज्ञशाला में सात्विक वातावरण है। गुरुकुल में जब आप किसी कार्य से आये थे (शायद बिजली विभाग में आप कार्यरत थे), उस सात्विक वातावरण से आप इतने प्रभावित हुए थे कि आपने अपने जीवन की धारा को ही बदल दिया था। गृहस्थाश्रम छोड़कर ब्रह्मचर्य की साधना को अपनाया था और दूसरे साथियों को भी स्वामी जी की प्रेरणा से तैयार किया था। तभी से आपका प्रयास आर्यसमाज के कार्य को सुदृढ़ कर रहा था। गतवर्ष आपका स्वास्थ्य कमजोर हो गया था, तब आपके दर्शनों के लिए स्वामी प्रणवानन्द जी के साथ दिल्ली अस्पताल गया था और आपसे आशीर्वाद लिया था। फिर गुरुकुल झज्जर के सम्मेलन पर मिला था सोच रहा था कि शताब्दी पर जाकर फिर दर्शन करूँगा। लेकिन आज प्रातः की सूचना ने सभी कुलवासियों को शोकाकुल कर दिया। शान्तियज्ञ किया और सभी ने मौन रहकर अपनी श्रद्धांजलि प्रदान की। मैं आर्य प्रतिनिधि सभा उ0 प्र0,लखनऊ एवं गुरुकुल पूठ-गुरुकुल ततारपुर और गुरुकुल सिरसागंज की ओर से अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

(पृष्ठ 2 का शेष)

हैं उनका कारण पूर्वजन्म के पुण्य वा पापकर्म होते हैं।

पुनर्जन्म के विषय में वेदादि सब शास्त्र तथा ऋषि-मुनि, विद्वान् सभी एक मत हैं। आत्मा नित्य है। देह विनाशर्थमां है। शुभाशुभ कर्मोनुसार जीवात्मा विभिन्न शरीरों को धारण करके सुख-दुःख भोगता है। यह शरीर ही जीवात्मा का भोगापतन है। कर्म का फल जीव किस प्रकार भोगता है, इस पर श्री हीरेन्द्र नाथ दत्त, एम०ए० ने अपनी ''कर्मवाद और जन्मान्तर'' पुस्तक में एक सच्ची घटना का उल्लेख किया है। जो इस प्रकार है :

महाराष्ट्र के पहाड़ी प्रदेश में एक डाकू रहता था। लूट-खसोट करना ही उसका कार्य था। एक दिन एक व्यापारी बहुत सा धन लेकर उस पहाड़ी मार्ग से होकर गुजर रहा था। वह उस डाकू के पंजे में फंस गया। उसने दीन भाव से गिड़गिड़ाकर उस डाकू से कहा कि मेरी सारी सम्पत्ति आप ले लें, किन्तु मेरे प्राणों को छोड़ दो। निर्दयी डाकू ने उसकी प्रार्थना अनसुनी करके उसका धन तो लिया ही उसकी हत्या भी कर दी। बहुत सा धन हाथ में आने से उस डाकू ने डकैती करना छोड़ दिया और वह एक धनी मनुष्य की भाँति रहने लगा। पहले उसके यहाँ कोई सन्तान न थी। बुढ़ापे में उसके घर में एक पुत्र पैदा हुआ। वृद्ध पिता को यह बालक प्राणों से भी प्यारा था। बूढ़े ने अपने बालक को पालने-पोसने और पढ़ाने में बहुत पैसा खर्च किया। जवान हो जाने पर उसका एक सुन्दर युवती से विवाह कर दिया। बूढ़ा व्यक्ति अपने अपने बालक को देख नई-नई आशाओं के महल खड़ा करता रहता था। लड़के को एकाएक ऐसा रोग हो गया कि वह खाट पर पड़ गया। बड़े-बड़े वैद्यों से चिकित्सा कराई, पण्डितों से पूजा पाठ भी कराये किन्तु कोई उपाय कारगर सिद्ध न हुआ। उसके जीने की आशा जाती रही।

एक दिन अचानक रोगी को कुछ आराम सा मालूम हुआ। प्रसन्नता से उसके पिता का मुख खिल उठा। वह बेटे की चारपाई पर बैठा था। पुत्र ने संकेत किया मैं पिता से कुछ गुप्त बात करना चाहता हूँ। तब नौकर-चाकर और दूसरे लोगों को दूसरे कमरे में भेज दिया गया। एकान्त पाकर पुत्र ने पिता से पूछा क्या आपने मुझे पहचाना है। पिता ने समझा बालक बहोशी में बोल रहा है। उसने उसे दिलासा देकर कहा बेटा यह क्या कहते हो। तुम मेरे प्राण प्रिय पुत्र हो। बेटे ने कहा मैं यह नहीं पूछता। आपको उस दिन की याद है या नहीं जब आपने पहाड़ी रास्ते में व्यापारी की हत्या करके उसका धन छीन लिया था। बूढ़े के सिर पर मानों गाज गिर गयी। उसने सोचा इस लड़के को यह बात किसने बतायी। उसने कहा यह तुम क्या कह रहे हो। क्या किसी वैद्य को बुलाऊं।

लड़के ने कहा अब समय नहीं है। मरने से पहले मैं अन्तिम बात कह देना चाहता हूँ। मैं वही व्यापारी हूँ जिसे आपने बुरी तरह मारा था। मैं इस जन्म में आपका बेटा हूँ। जन्म से लेकर आजतक जितना पैसा मेरे लिए आपने खर्च किया, हिसाब करने पर आपको मालूम हो जायेगा कि उतना ही पैसा आपने व्यापारी का लूटा था। अब मैं जाता हूँ। उस रुपये का ब्याज लेने के लिए अपनी स्त्री को छोड़ रहा हूँ। इसका पालन आप जीवन भर करना। इतना कहकर बेटे की आंखें सदा के लिए बन्द हो गई।

कर्म फल सिद्धान्त से पता चलता है कि जो मनुष्य जन्म से ही अन्धा, लूला, लंगड़ा या पागल पैदा होता है वह उसके आत्म अपराध रूपी हृदय का ही फल होता है। कर्म देव उसे विवश करके रोग भोगने के लिए मजबूर कर देता है कि जिससे वह जन्म भर उस पुराने पाप के निशान को लाद कर चलता रहे।

कर्मबन्धन से मुक्ति का उपाय भी परमेश्वर ने मनुष्य की कर्म स्वतन्त्रता में ही स्थापित किया हुआ है। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है। करना, न करना या अन्यथा करना मनुष्य के आधीन है। मानसिक संवेगों से उत्प्रेरित होकर व्यक्ति जब कर्म में प्रवृत्त होता है तो कर्म बंधन में बंध जाता है। किन्तु इन संवेगों से ऊपर उठकर जब विवेक के प्रकाश में कर्म करता है तो कर्मबन्धनों से छूट जाता है। इसीलिये महाभारत में कहा गया है

अक्रोधेन जयेत क्रोधं, साधुं साधुना जयेत।
जयेत् कदयं दानेन, सत्येन चानृता जयेत।।

अर्थात् क्रोध को प्यार से, दुष्ट को साधुता से, कंजूस को दान से और झूठ को अपने सत्य से ही जीतना चाहिये।

कर्म बन्धन या कर्म संस्कार ही जन्म-जन्मान्तरों का हेतु है। सारे संसार के महापुरुष, विचारक, वैज्ञानिक जन्म-जन्मान्तरों में विश्वास रखते हैं क्योंकि यह वैदिक सिद्धान्त है। वेद में प्रतिपादित है।

अब हम यहां कुछ पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का उल्लेख करते हैं

''As we live through thousands of dreams in our present life, so is our psesnt life only one of any thousands of such lives which we enter fron the other more real life.........and then return after death. Our life is but one of the dreams of that more real life, and so it is ondiess ly, until the very last one, the very real life the life of God.'' –Toistoy

भावार्थ जैसे हम स्वप्नावस्था में हजारों स्वप्न देखते हैं वैसे ही मुक्तावस्था की अपेक्षा वर्तमान जीवन भी हजारों ऐसे ही जीवनों में से एक जीवन है और जैसे स्वप्नों की यह कड़ी उस समय तक चलती रहती है जब तक व्यक्ति जाग नहीं जाता, वैसे ही यह जीवन चक्र भी तब तक जारी रहता है जब तक हम मुक्त होकर अमर नहीं हो जाते।

''I am confident that there truly is such a thing as living again, that the living spring from the dead and that the souls of the dead are in existance. –Soerates

मुझे दृढ़ निश्चय है कि मनुष्य के मरने के बाद भी कोई एक ऐसी वस्तु है जो सदैव जीवित रहती है। मृतकों के आत्मा की सत्ता सदा बनी रहती है। जो नये शरीरों में उत्पन्न होती है।

''The soul comes from without int the human

(शेष पृष्ठ २२ का)

body, as into a temporexy abode and it goos out of it a new ...., it passes into other habitations, for the sour is immortal.''

–Bmerson

मानव शरीर में जीवात्मा बाहर से थोड़े समय के लिए आता है, मृत्यु के पश्चात् यह दूसरे नये शरीर में प्रवेश कर लेता है। वहां वह नये संस्कारों से युक्त होता है। जीवात्मा अमर है।

''Finding myself to exist in the world, I belive i shall, in some shape or other, always extet.''

–Benjamin Franklin.

जगत में अपने अस्तित्त्व पर विचार करते हुये मुझे यह विश्वास हो गया है कि मेरा किसी न किसी रूप में अस्तित्त्व सदैव बना रहेगा।

''I died as a nineral and became a plant,
I died as a plant mand rose to animal,
I died as animal and was a man,
Why should I fear ? When was I lese by dying.''

–Jalaluddin Rcomi

मैं भूतों से वनस्पति, वनस्पति से पशु, पशु से मानव रूप में अनेकों बार जन्मता और मरता रहा। मरने से डरने का भय कैसा। मौत तो हमारी सदा की सहभागी है।

इस प्रकार के अनेकों उदाहरण पेश किये जा सकते है। उससे लेख का विस्तार होता है।

सारांश रूप में हम कह सकते हैं वेद का पुनर्जन्म का सिद्धान्त सार्वभौमिक है। संसार के सभी बुद्धिजीवी इसे स्वीकार करते हैं। यह पुनर्जन्म का सिद्धान्त कर्मफल के सिद्धान्त के साथ अनुबंधित हो कर ही चलता है। कर्म फल भोगने के लिए ही जीव नाना शरीरों को धारण करता है।जब तक कर्म चक्र चलता रहेगा तो उसका फल भी उपजता रहेगा और फल भोग के लिए जीव का विभिन्न शरीरों में आवागमन भी बना ही रहेगा। मुक्तावस्था में जाकर ही जीव जन्म-जन्मान्तरों के चक्र से मुक्त हो जाता है और वह भी मुक्ति में अवधि तक ही रहता है।

मुक्ति की अवधि का काल (क) ४३ लाख २० सहस्र वर्षों की चतुर्युगी, दो सहस्र चतुयुगियों एक अहोरात्र, ऐसे तीस अहोरात्रों का एक महीना, ऐसे बारह महीनों का एक वर्ष, ऐसे शत वर्षो का 'परान्तकाल' होता है।

(ख) वे मुक्त जीव मुक्ति में प्राप्त होके ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात् मुक्ति के सुख को छोड़ के संसार में आते हैं।

(स०प्र० नवम समुल्लास)

न देवा मृच्छिलामयाः
(डॉ. विनोदचन्द्र विद्यालंकार)

"मेरे गाँव में गाँव से बाहर एक बड़ा देवालय है। उसमें शिवरात्रि के दिन रात में बहुत लोग जाते थे और पूजा-अर्चना करते थे। मेरे पिता, मैं और बहुत से लोग वहाँ इकट्ठा हुए थे। पहले प्रहर की पूजा पूरी कर ली। दूसरे प्रहर की भी पूजा हो गई। अनन्तर बारह बजने पर धीरे-धीरे लोग जहाँ के तहाँ ही झपकी लेने लगे। मेरे पिता को भी झपकी आ गई। इतने में पुजारी बाहर गया। उपवास निष्फल होने के भय से मैं सोया नहीं। इतने में ऐसा चमत्कार हुआ कि मंदिर में बिल में से चूहे बाहर निकले और पिण्डी के आसपास फिरने लगे। पिण्डी के चावलों को ही खाने लगे। मैं जगा हुआ ही था। इसलिए यह सब चमत्कार देख रहा था। पूर्व दिन शिवरात्रि की कथा सुनी थी। उसमें शिव के अक्राल-विक्राल गुण, उसके पाशुपतास्त्र उसके वाहन वृषभ और उसके अद्‌भुत वीर्य आदि के विषय में बहुत सुन चुका था इसलिए जब चूहों की यह लीला देखी, तब मेरी बाल बुद्धि में ऐसा लगा कि जो शिव अपने पाशुपतास्त्र से बड़े से बड़े प्रचण्ड दैत्यों को मारता है, वह ऐसे चूहों को देख कर क्यों नहीं हटाता। ऐसे अनेक तर्क मेरे मन में उत्पन्न हुए और मैंने पिता को जगा कर पूछा कि इतना महान् शिव इन क्षुद्र चूहों को क्यों नहीं हटाता? पिता ने कहा कि तेरी बुद्धि अत्यन्त भ्रष्ट है। यह केवल देवता की मूर्ति है। तब मैंने संकल्प किया कि जब इस त्रिशूलधारी को मैं प्रत्यक्ष देखूँगा, तभी पूजा करूँगा, अन्यथा नहीं करूंगा। ऐसा निश्चय करके मैं घर चला गया। अनन्तर मेरे मन में 'घर छोड़कर चला जाऊँ, ऐसा विचार आया।" यह आपबीती है बालक मूलशंकर की, जिसने अपने उक्त निश्चय के अनुरूप घर छोड़ दिया, सच्चे ईश्वर की खोज में दर-दर भटका, कतिपय योगियों एवं गुरु विरजानन्द से ज्ञानार्जन किया, संन्यास लेकर स्वामी दयानन्द नाम धारण किया, वेदादि ग्रन्थों की खोज की, उन्हें पढ़ा, स्थान-स्थान धर्मोपदेश दिये तथा संकल्प किया- "आर्य धर्म की उन्नति होवे, इसके लिए मेरे सदृश बहुत से धर्मोपदेशक अपने इस देश में उत्पन्न होने चाहिए। अकेले के हाथ से यह काम बराबर नहीं हो सकता। फिर भी अपनी बुद्धि के अनुसार और सामर्थ्यानुसार मैंने जो दीक्षा ली, उसे चलाऊंगा ऐसा संकल्प किया है। आर्यसमाज की सर्वत्र स्थापना होकर मूर्तिपूजा आदि दुष्ट आचार ये सर्वत्र बन्द होवें; वेदशास्त्र के शुद्ध अर्थ समझें और उसके अनुसार आचरण होने से देश की उन्नति होवे, ऐसी ईश्वर से प्रार्थना है।" इस निश्चय एवं आकांक्षा के साथ ही महर्षि अपने 'मिशन' को आगे बढ़ाने में सर्वतोभावेन सन्नद्ध हो गये और आजीवन इसी में लगे रहे।

महर्षि दयानन्द मूर्तिपूजा के विरोधी ही नहीं, प्रबल विरोधी थे, यहाँ तक कि उन्होंने इसे दुष्ट-आचार तक की संज्ञा दे डाली। ईश्वर के निराकार होने के कारण उसकी मूर्ति हो ही नहीं सकती, इस प्रधान युक्ति के अतिरिक्त अन्य अनेक अकाट्य तर्कों एवं प्रमाणों के आधार पर वे मूर्तिपूजा का सतत खण्डन करते रहे। कुछ लोगों के इस मन्तव्य का, कि मूर्त पदार्थों के बिना ईश्वर का ध्यान कैसे करते बनेगा, उत्तर देते हुए वे कहते हैं- **"शब्द का आकार नहीं तो भी शब्द ध्यान में आता है वा नहीं? आकाश का आकार नहीं तो भी आकाश का ज्ञान करने में आता है वा नहीं। जीव का आकार नहीं तो भी जीवन का ध्यान होता है वा नहीं?"** (पूना-प्रवचन, 10 जुलाई 1875)। वे इसी सम्बन्ध में अपने तर्क को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं- **"जब परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक है, तब उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती और जो मूर्ति के दर्शन मात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे, तो परमेश्वर के बनाये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जिनमें ईश्वर ने अद्‌भुत रचना की है, क्या ऐसी रचनायुक्त पृथिवी, पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महामूर्तियाँ कि जिन**

पहाड़ आदि से मनुष्यकृत मूर्तियाँ बनती हैं, उनको देखकर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता?"

(सत्यार्थप्रकाश, एकादश अध्याय)।

जिन लोगों के मत में साकार में मन स्थिर रहता है और निराकार में स्थिर होना कठिन है, उनकी शंका का समाधान करते हुए स्वामी जी कहते हैं- "साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसी के एक-एक अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है और निराकार परमात्मा के ग्रहण में यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है, तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से चंचल भी नहीं रहता, किन्तु उसी के गुण, कर्म, स्वभाव का विचार करता-करता आनन्द में मग्न होकर स्थिर हो जाता है और जो साकार में स्थिर हो, तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता, क्योंकि जगत् में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकार में फंसा रहता है, परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता, जब तक निराकार में न लगावे।" (सत्यार्थप्रकाश, एकादश अध्याय)। न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हि सादित्येषा यसमान्न जात इत्येषः।। यजु0।।32/3।।

अर्थात् उत्तम कीर्तियों के हेतु जो सत्यभाषणादि कर्म हैं, उनका करना ही जिसका 'नामस्मरण' कहाता है, जो तेज वाले सूर्यादि लोकों की उत्पत्ति का कारण है, जो सब की सभी प्रकार से रक्षा करता है तथा जो किसी माता-पिता के संयोग से उत्पन्न नहीं हुआ, न होता है और न होगा, उस परमेश्वर की कोई प्रतिमा-मूर्ति नहीं है।

यजुर्वेद के निम्न मंत्र को उद्धृत करके उसका अर्थ करते हुए महर्षि लिखते हैं- "जो पृथिवी अदि भूत, पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं, वे इस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःख रूप नरक में गिर कर महाक्लेश भोगते हैं - अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्याᳬरता।।यजु0 40-9

न केवल वेदों में, वरन् पुराणों में भी मूर्ति पूजा का विरोध किया गया है। देवी भागवत के अनुसार भी मिट्टी और पत्थर के देवता नहीं होते-

"न देवा मृच्छिलामयाः" (स्कन्द 9.7.42)

ब्रह्मवैवर्त पुराण में तो देवपूजा को अवैदिक कहा गया है-अवेदविहिता पूजा सर्वहानिकरण्डिका" (4.21.52) अर्थात् ये जितनी देवपूजा है, सभी अवैदिक पूजा है- वेद विरुद्ध है; सारी ही हानि पहुँचाने वाली है। कल्किपुराण में नाना प्रकार के देवताओं को रचने एवं सजाने को इन्द्रजाल सा फैलाना कहा गया है-

नानादेवादिलिंगेषु भूषणैर्भूषितेषु च।
इन्द्रजालिकवद्वर्तिकल्पकाः पूजकाजनाः।।

कल्कि. 3.16.30

श्रीमद् भागवतपुराण में लिखा है कि केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं होते और केवल मिट्टी या पत्थर की प्रतिमाएं ही देवता नहीं होतीं। यह दीर्घकाल तक पूजने से भी पवित्र नहीं बनाते :

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्यरुकालेन दर्शनादेव साधवः।।

भाग0 10.84.11

यही नहीं, इस पुराण में श्री कृष्ण के मुख से यह कहलवाया गया है कि मैं सभी भूतों में सदा समान भाव से रहता हूँ, इस तथ्य को जानकर मूर्ति बनाकर पूजा स्वांग मात्र है :-

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा।
तमविज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्।।

भाग0 3.29.21

अपि च, मैं सबका आत्मा, परमेश्वर सभी भूतों में स्थित हूँ, तथापि जो मोहवश मेरी उपेक्षा करके मूर्ति-पूजा में लगा रहता है, वह मानो भस्म में ही आहुति डालता है :

यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।
हित्वार्चां भजते मोढ्याद् भस्मन्येव जुहोति सः।।

भाग0 3.29.22

इसी सन्दर्भ में भागवत 10.84.13 द्रष्टव्य है, जिसमें कहा गया है कि जो वात, पित्त, कफ इन तीन धातुओं से बने देह में आत्माभिमान, कलत्रादिक में ममता, मिट्टी, काष्ठ, पत्थर आदि की बनी हुई मूर्तियों में देवता-बुद्धि

और पानी में तीर्थ-बुद्धि रखता है, वह मनुष्य होने पर भी पशुओं में नीच गधा है :

यस्मात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।

यस्तीर्थबुद्धि सलिलेन कर्हिचिज्जनेष्वाभिज्ञेषु स एव गोखरः।। भाग 10.84.13

इतना ही नहीं, इस पुराण में यहाँ तक कह दिया गया है कि जब तक मनुष्य सर्वव्यापक परमात्मा को शुद्ध हृदय में नही प्राप्त करता, तब तक उसकी मुक्ति नहीं हो सकती-

"यावन्न वेद सुहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम्"

(भागवत 3.19.25)

एवं व्यासदेव जी द्वारा रचित प्रथम पुराण श्रीमद् भागवत में जब मूर्तिपूजा को स्वांग मात्र, मूर्तिपूजक को गर्दभ तक की संज्ञा दे दी है तथा उसे अग्नि की बजाय भस्म में आहुति डालने वाला कह दिया है, तो पुराणमतावलम्बियों द्वारा मूर्तिपूजा पर बल देना तथा मूर्तिपूजा का विरोध करने वाले को 'नास्तिक' कहना कहाँ तक युक्तियुक्त है?

लिंग पुराण के अनुसार, ज्ञानसम्पन्न पुरुष मूर्ति को नहीं पूजते, प्रत्युत अज्ञानी लोग जड़-पूजन में प्रवृत्त हाते हैं :

कर्मयज्ञरता स्थूला स्थूललिंगार्चने रताः।
असतां भावनार्थाय नान्यथा स्थूलविग्रहः।
आध्यात्मिकं च यल्लिंगं प्रत्यक्षो यस्य नाभवेत्।
असौ मूढ़ो बहिः सर्वं कल्पयित्वैव नान्यथा।।
ज्ञानिनां सूक्ष्मममलं भवेत् प्रत्यक्षम् व्ययम्।
यथास्थूलमयुक्तानां मृत्काष्ठाद्यैः प्रकल्पितम्।।
लिंग पुराण पूर्वा अ. 75

अभिप्राय यह है कि कर्मयज्ञ में लगे हुए स्थूल जड़ बुद्धि लोग स्थूल लिंग के पूजन में तत्पर रहते हैं। असत् पुरुष अर्थात् अज्ञानियों की भावना के निमित्त ही यह स्थूल रूप बनाया जाता है, दूसरा इसका कोई प्रयोजन नहीं है। जिसके आध्यात्मिक लिंग प्रत्यक्ष नहीं होता, वह मूढ़ ही बाहर ही सब कुछ कल्पित करके पूजता है, ज्ञानियों के तो सूक्ष्म मलरहित अव्यय ही प्रत्यक्ष होता है। यह तो रही पुराणों की बात, अब महाभारत आदि ग्रन्थों के सन्दर्भ देखिये। महाभारत में भी प्रतिमादिक के पूजकों को मूढ़ की संज्ञा दी गई है :

मृच्छिलाधातुदार्वादि मूर्त्तावीश्वरबुद्धयः।
क्लिश्यन्ति तपसा मूढ़ाः परां शान्ति न यान्ति ते।।
तीर्थेषु पशुयज्ञेषु काष्ठपाषाणमृण्मये।
प्रतिमादौ मनो येषां ते नरा मूढचेतसः।।

अर्थात् मिट्टी, शिला, धातु, काष्ठ आदि की मूर्ति में ईश्वर-बुद्धि करने वाले जो मूढ़, व्यर्थ के तप से स्वयं को कष्ट देते हैं, वे शान्ति नहीं पाते। तीर्थों में और पशु द्वारा किये यज्ञों में, पत्थर, काष्ठ एवं मिट्ट्री की प्रतिमा आदि में जिनका मन है, वे मूढ़ हैं।

उत्तरगीता के अनुसार, आत्मध्यान में लगे हुए योगी पानी के तीर्थों और पाषाणमय देवों के समीप नहीं जातेः

तीर्थानितोयरूपाणि देवान् पाषाणमृण्मयान्।
योगिनो न प्रपद्यन्ते आत्मध्यानपरायणाः।।

उ0गी0 90

कुमार तन्त्रकार के मत में, सहजावस्था अर्थात् स्वाभाविक अनुचिन्तन उत्तम है, ध्यान-धारणा मध्यम और जपस्तुति अधम तथा मूर्ति-पूजा अधम से भी अधम है :

उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यानधारणम्।
जपः स्तुति स्यादधमा मूर्तिपूजाधमाधमा।।

संत तुकाराम ने मूर्तिपूजा करने वालों को 'जड़-मूर्ति' तक कहते हुए उनके जन्म को व्यर्थ बताया है-

"जड़पुजुनि जड़जाल व्यर्थ जन्मुनियां गेलो"। उनकी सम्मति में मिट्टी और पत्थर देव नहीं हो सकते- "मृत्तिका पाषाण देव न हे"।

यदि मूर्तिपूजा वेदविरुद्ध है , कतिपय पुराणों एंव अन्य ग्रन्थों में भी इसका विरोध किया गया है और वैदिक युग के आर्य विश्व की सर्वोच्च सत्ता के रूप में एक ईश्वर में विश्वास रखते थे, उसकी पूजा हेतु स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना का आश्रय लेते थे, उनका धार्मिक कर्मकाण्ड यज्ञों के रूप में था तो एक स्वाभाविक प्रश्न उत्पन्न होता है कि वेदों को प्रमाण रूप में स्वीकार करने वाले हिन्दुओं में मूर्तिपूजा का प्रचलन कब और किस प्रकार हुआ। महर्षि दयानन्द के अनसुार, यह मूर्ति

पूजा प्रथम आर्यावर्त में नहीं थी, वरन् यह अढ़ाई-तीन हजार वर्ष के आसपास वाममार्गी और जैनियों से आरम्भ हुई; जब जैनियों ने गिरनार, पालिटाना, शिखर, शत्रुञ्जय और आबू आदि तीर्थ बनाये, उसके बाद उनके अनुकूल इन लोगों (हिन्दुओं) ने भी बना लिये (द्रष्टव्य सत्यार्थप्रकाश, एकादश अध्याय)। कालान्तर में यह बौद्धों में प्रचलित हुई। फिर वैदिक धर्म के अनुयायियों में। ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसे तथ्यात्मक माना गया है। (द्रष्टव्य डॉ0 सत्यकेतु विद्यालंकार कृत 'आर्यसमाज का इतिहास'प्रथम खण्ड, अध्याय 13, पृष्ठ 381-385)।

प्रश्न होता है कि यदि मूर्तिरूप ईश्वर की पूजा उपासना न की जाये, तो फिर किसकी उपासना करनी अभिप्रेत है- कस्मै देवाय हविषा विधेम?" इस प्रश्न का उत्तर है कि किसी प्रतिमा की पूजा नहीं करनी चाहिए, वरन् उस देवता की उपासना करनी अभिप्रेत है,जिसमें अथर्ववेद(4.2)मेंवर्णितनिम्नलक्षणविद्यमानहों,जो आत्मा का देने वाला है, बल का देने वाला है, सब देव जिसकी आज्ञा का पालन करते हैं, जो दोपायों और चौपायों का स्वामी है, जो प्राणियों एवं अन्यों का अपने निज सामर्थ्य से एकमात्र राजा है, जिसका आश्रय अमरत्व देने वाला है, जिससे विमुख होना मृत्यु है, परस्पर विरोध करने वाले और आक्रोश के साथ युद्ध करने वाले दोनों ओर के सैनिक स्वरक्षार्थ जिसकी शरण में जाते हैं, भय प्राप्त होने पर द्यावापृथिवी में रहने वाले सब जिसको अपनी सहायता के लिए पुकारते हैं, जिसके लोक को जाने का यह मार्ग विशेष सम्मान बढ़ाने वला है, जिसके प्रभाव से यह सूर्य अपने प्रकाश से चारों ओर फैल रहा है तथा द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष विस्तीर्ण हुए हैं, जिसकी महिमा से ये सब हिमाच्छादित पर्वत खड़े हुए हैं, जिसके सामर्थ्य से समुद्र के जल में भी भूमि होती है, ये सब दिशाएं उपदिशाएं जिसकी बाहु हैं, जो जगत् का एकमात्र स्वामी है, जिसने पृथ्वी और द्युलोक को धारण किया हुआ है तथा जगत् के प्रारम्भ में बालक को जन्म देने वाली जलधाराओं ने जब गर्भ को प्रेरित किया, उस समय जो उत्पन्न होने वाले बालक का सुवर्णवत् झिल्ली रूप था। उक्त लक्षणों से जिस परमेश्वर का बोध होता है, उसकी उपासना सबको करनी चाहिए, इससे भिन्न की नहीं।

वह प्रभु इस जगत् का एक बड़ा अधिष्ठाता है, वह सब जनों के व्यवहारों को हर एक के पास रहने के समान देखता है-'बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति' (अथर्व. 4.16.1)। वह सर्वज्ञ है अर्थात् उससे छिप कर कोई मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। वह सर्वव्यापक है यानि वह विशाल सागर से लेकर जल के छोटे से बूंद तक में सब जगह विद्यमान रहता है- "उतौ समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके विलीनः" (अथर्व. 4. 16.3)। वह प्रभु स्वयं तो सबका- चाहे कोई किसी भी लोक में रहता हो- निरीक्षण करता ही है, उसके सहस्राक्ष दूत भी इतने प्रबल हैं कि उनकी दृष्टि सबके ऊपर समान ही रहती है- उत यो द्यामतिसर्पात्परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः। दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अतिपश्यन्ति भूमिम्।। अथर्व. 4.16.4

इस प्रभु के पाश इतने प्रबल हैं कि असत्यवादी को बांध लेते हैं, यानि छिन्न- भिन्न कर देते हैं और सत्यवादी को मुक्त कर देते हैं- "छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवद्यति तं सृजन्तुं" (अथर्व. 4.16.6)।

यही नहीं, जो परमेश्वर सबका जानने वाला, सबके मन का साक्षी, सबके ऊपर विराजमान, अनादिस्वरूप, सबमें व्यापक, अत्यन्त पराक्रमी, सब प्रकार से शरीर से रहित, व्रण आदि सब रोगों से रहित, नाड़ी आदि बन्धन से पृथक्, शुद्ध, सब पापों से न्यारा आदि लक्षणों से युक्त है, वही सबका उपासनीय है :

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्याः सामभ्यः।। यजु0 40.8

चूंकि वेदोक्त उपर्युक्त गुण लक्षण मूर्तिरूप ईश्वर में संभव नहीं है, अतः मूर्तिपूजा-निषेध वेदसम्मत स्वतः सिद्ध है। इस प्रकार प्रत्येक आर्य का कर्तव्य है कि वह सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता परमेश्वर की उपासना करने का व्रत ले तथा अन्य आर्यों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करे।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/०२/२०१६
भार- ४० ग्राम

फरवरी 2016

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु. प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु. प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.	प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.......................................
ग्राम.......................................
डा0 ....
जिला.......................................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।